सेतुबंध

श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड
खजांची रोड, पटना-४

आमुख

हे सृजन की शक्तियों के सांध्वनिक आधार !
तुम किरण के अमृत का करते चलो संचार !

हे गगन के गर्व ! गर्वोन्नत-शिखर-हिम-हास !
हे अनल के पर्व की संदीप्ति के इतिहास !
हे मरुत ! मारुत-मुखर-मधु-छंद युग-युग गेय !
हे प्रकृति के छांदसीय-प्रमाण-प्राण अजेय !
हे विपुल-धन ! अतुल-वन-सौन्दर्य ! रस के स्रोत !
हे सजल-घन-पोत ! हे पर्जन्य-पवि-उद्योत !
हे निशा के आभरण सुख-स्वप्न सीमाहीन !
हे उषा के स्वर्ण-खग चिर-मुक्त चिर स्वाधीन !
हे धरा के रूप-गौरव ! स्वर्ग के वादित्र !
आंगिरस हे ! हे स्वयंभुव मनु मनुज के मित्र !
हे तपोधन ! हे तपस्या के अमर श्रृंगार !
तुम किरण के अमृत का देते चलो उपहार !

हे अहं को चीरकर निकले हुए आह्वान !
व्यष्टि की अनुभूति में बैठे समष्टि-विधान !
एकता के सूत्र हे जिसमें गुँथे नक्षत्र !
कामना-तरु कल्पना-तरु कल्प-तरु के पत्र !

चेतनाओं के समुच्चय स्नेह-सुषमा-श्लिष्ट !
हे सुनिर्मल ! शिशु-सरल ! तुम हो न किंचित क्लिष्ट !
भुवन-भर के भाग्य की संवर्द्धना का मंत्र !
तुम लिये हो साधना का यंत्र, कल्पक-तंत्र !
विश्व में सबसे प्रथम यजनीय शोभन शुद्ध !
युग-प्रवर्तक ! ऊर्द्ध-पथ-गामी सतत उद्बुद्ध !
हे बृहस्पति ! विश्वकर्मा ! शून्य के स्वरकार !
तुम किरण के अमृत का रचते चलो त्योहार !

● ●
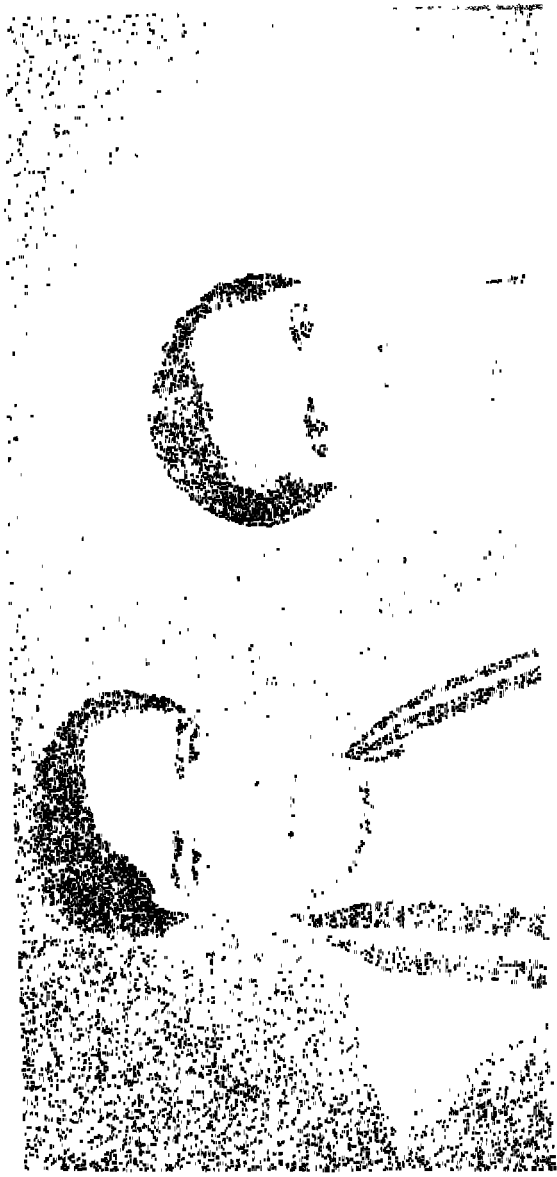
कवि श्री दिनकर को

भूमिका

योजना के अनुसार प्रस्तुत संग्रह को १९६१ ई० में ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था। इसी कारण, आरम्भ में, १९६० ई० तक की कविताएँ इसमें शामिल की गयी थीं। प्रेस-कॉपी कई बार मेरे हाथ से निकली और हर बार मेरे पास लौट आयी। जब-जब पाण्डुलिपि प्रेस में गयी, कुछ नयी कविताएँ जोड़ दी गयीं। लेकिन ऐसी कविताओं की संख्या बहुत कम है।

लगभग सात वर्षों की प्रतीक्षा के बाद हम यह पुस्तक लेकर कृपालु पाठकों की सेवा में उपस्थित हो रहे हैं। इसका सारा श्रेय ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना को है।

कविताओं के चुनाव में कोई खास नीति नहीं अपनायी गयी है। सब तरह की कविताओं को स्थान दिया गया है। क्रम-स्थापन में भी स्वतंत्रता से काम लिया गया है। शब्दों के प्रयोग में मैंने अपनी दृष्टि रखी है और जहाँ आवश्यक समझा, परंपरा को नहीं माना है। ऐसी अनेक कविताएँ हैं, जो पहले गीत के रूप में प्रकाशित हुई थीं। प्रस्तुत संग्रह में उनका शीर्षक बदल दिया है।

'इलावर्त', रामकृष्ण एवेन्यू
राजेन्द्रनगर, पटना-१६

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'
१९ जून '६७

सूचनिका

● ●

भविता

आ मेरी कल्पने ! तुझे अपनी साँसों से छूकर
अनदेखी - अनखुली कली के मन का तार बना दूँ !

कल जो सूर्य उदय होगा उसका यह स्वस्ति-तिलक ले,
कल की किरणों का किंजल, ऊषा का यह जावक ले,
ले यह कल के शर्वरीश का चंदन-धुला सुयश ले,
कल की पूनम के सुहाग का रस से भरा कलश ले,
कल जो तारे निकलेंगे उनका अनुराग अलख ले,
कल की यामवती का काजल, ले आँखों में रख ले,
कल का इन्द्रधनुष ले रंगिणि ! अपने अंचल-पट में,
कल के मेघों को सम्हाल ले अपनी कुंचित लट में,

आ मेरी कल्पने ! तुझे अपने प्राणों से छूकर
अनबेधी - अनबिधी कली के मन का प्यार बना दूँ !

कल के अखिल पुण्य का जल ले, अपनी काया धो ले,
ले समस्त तप कल का सुभगे ! तपःपूत तू हो ले,
कल के ऊर्जस्वल विचार की चतुरंगिणी चमक ले,
कल के मेधावी की गति-मति, आयुध और यमक ले,

कल की कोटि-कोटि आँखों का अपलक नीराजन ले,
कल के कोटि-कोटि कण्ठों का अभिनंदन-वंदन ले,
कल के पथिक अजेय नियति का वज्र-द्वार खोलेंगे,
कल के अंकुर अक्षय-वट की वाणी में बोलेंगे,

आ मेरी कल्पने ! तुझे अपनी ज्वाला से छूकर
अनजानी-अनसुनी कली के मन का ज्वार बना दूँ !

रश्मि-निर्झर

सिन्धु को मैंने पुकारा था नहीं,
किंतु वह संकेत पर मेरे
थिरकता, नाचता, उल्लास से
आकाश भर अपनी लहर में !

लहर को मैंने पुकारा था नहीं
किंतु वह रह-रह उमड़ती, झूमती
मेरी अनावृत कल्पनाओं में अनाविल
खिल किरण की उर्म्मिला छवि-सी
सचेतन विश्व-भर में !

साँस से मेरी न जाने
छू लिया तुमने धरा के प्यार को कब ?
छू लिया निस्सीम तम में
सृजन के आधार को कब
साँस से मेरी न जाने !

आज तुम हो स्वप्न, मैं हूं सत्य
जीवन-दीप जलता;

ज्योति को मैंने पुकारा था नहीं
किंतु उसका विश्वमय-वरदान
मेरे प्राण-पथ पर सतत चलता।

अश्रु मेरा एक कण तुमको मिला था,
क्या उसीसे निकलकर करुणा तुम्हारी
आयु को अपनी पलक की छाँह में
चुपके सुलाकर
बन गयी चिररागिणी जीवन-मरण की?

गीत को मैंने पुकारा था नहीं
किंतु वह प्रत्येक धड़कन से हृदय की
झर रहा बन रश्मि-निर्झर!

आदीपित

साँसों के आँगन में जिस दिन
नव-वधू-सरीखी उतरी थी हिय की यह नन्ही-सी धड़कन
त्योहार वही मेरा पहला !

पलकों के मन्दिर में मैंने पुतली का दीप जलाया जब
हे देव ! तुम्हारी रूप-किरण में 'लौ' ने स्नेह मिलाया जब
नभ-पथ की सतरंगी रेखा बरसी कण-कण शीतल चंदन
शृंगार वही मेरा पहला !

बाँहें पसारकर जीवन ने माँगी जब कलियाँ अनाघ्रात
ओसों में सज-धजकर उतरी सहचरी एक छवि सजल गात
नभ को धरती मिल गयी, मुझे युग-युग की पहचानी दुलहन
संसार वही मेरा पहला !

नयनों से नयन मिले ज्योंही, कुछ देखा मुँदे नयन ने भी
देखा अपने को ही मैंने उत्फुल्ल प्रकृति के मन में भी
अधरों से अधर मिले ज्योंही, मन से संज्ञा का हुआ मिलन
अभिसार वही मेरा पहला !

बाती अरूप के दीपक की झिलमिल-झिलमिल झंकारमयी
जल रही धरा से अंबर तक अनिमिष निर्धूम पुकारमयी
दिन-रात घूमती आँसू लिए अंचल में जो अनजान जलन
है प्यार वही मेरा पहला !

प्रेरणा

शुष्क तरु-सा,
चूमता पतझार जिसको,
छाँह जिसके शीश पर फैली युगों से
शून्य तम की
वह खड़ा ग्रहपिण्ड ले शत-शत अचेतन
प्राण ! अपने छन्द
तुम आकाश को दे दो !

सिंधु से कह दो
तुम्हारे मोतियों में देख ले
अपने हृदय की ज्योति, ज्वाला,
प्रकृति से कह दो
सजा ले दीप-माला
अग्नि-कण चुनकर तुम्हारे अक्षरों के !

यह तड़पती वेदनाओं की सुनहली चमक
जिससे जन्म लेती
साधना आराधना-सी,

हे पुजारी !
आंसुओंवाली धरा को प्यास को दे दो !

कौन नित संध्या जलाती है
तुम्हारी चेतना की वर्त्तिका ले
सींच मानव-देवता की वेदिका अपने अमृत से ?
भक्ति ?
उसकी शक्ति शाद्वल
गीत-दल में भर
तरुण विश्वास को दे दो !

प्राण ! अपने छन्द
तुम आकाश को दे दो !

अमर बंधन

मैं बड़ा निश्चय मरण से !

शून्य (वह जो व्योम को रहता लपेटे सांस में अपनी
अखिल विस्तार को रहता समेटे
और जो तिरता विसुध हो
काल की निस्सीम लहरों पर
अनादि प्रियत्व की मृदु रागिणी भर
सृष्टि के प्रत्येक कण में)—
ऊँघता जब बैठ सिरहाने थकी-सोयी प्रकृति के,
प्रथम-पाटल-पटल पर तब आँक देता क्या न मैं ही प्रिय !
तुम्हारा पुलक-आकुल छंद मृदु नव-जागरण में ?
मैं बड़ा निश्चय मरण से !

यह विपुल ब्रह्माण्ड कब से जल रहा है, जल रहा है !
आयु का आलोक तम के अंक में
द्रव के समान पिघल रहा है !
और मुख पर डाल अवगुण्ठन
कि जिसमें फूटतीं लपटें भयङ्कर
आँसुओं पर दीन धरती के न जाने

कौन निर्मम चल रहा है, चल रहा है !
शृंखलाएँ टूटती हैं, और जुड़तीं, टूटतीं फिर
किंतु पथ-रेखा बनाता जा रहा मैं
भिन्नताओं को पिरोकर
एक स्वर्णिम सूत्र में अपनी किरण से
मैं बड़ा निश्चय मरण से !

बुझ न पाया दीप
'लौ' है वन्दना बनकर खड़ी उस ओर
झंझा जा न सकती है जहाँ कल्पान्त के संग भी
तुनुक-सी वह 'लौ'
तुम्हारी व्याप्ति के स्वर्णाभ अंचल में
पिरोकर काल का सम्पूर्ण चिलाधार
बनती जा रही अगणित जनम की साध !
शेष का निःशेष परिचय—
बाँध लेता है तुम्हारा प्रलय
अपने स्पर्श में चुपचाप
अमर यह बन्धन तुम्हारा !
मैं हुआ निर्बन्ध साँसों के वरण से
मैं बड़ा निश्चय मरण से !

वाक

जब नील गगन में मुझे खोजने तुम आयीं
धरती की आँखों में बसता था नील गगन

किरणों को मन हरनेवाला शृंगार दिया
नीली-नीली लहरों को तुमने प्यार दिया
निस्सीम शून्य को स्वर, स्वर को संसार दिया
अनजान व्याप्ति को नया एक आधार दिया

अयि विश्व-वीन के तारों की संज्ञा को—
संदीप्ति-शिखा से चूम जगानेवाली !
जब मुग्ध पवन में मुझे खोजने तुम आयीं
धरती की साँसों में बसता था मुग्ध पवन

तुम उतर रही थीं अनिमिष पथ-संधान लिये
होठों की रेखाओं में सृष्टि-विहान लिये
तुम उतर रही थीं दिशा-दिशा से गान लिये
जीवन का परिचय शाश्वत ज्योतिष्मान लिये

पग-नूपुर की झन-झन में थी व्यंजना विकल
सस्मित भविष्य दृग खोल मौन था देख रहा

जब यज्ञ-भुवन में मुझे खोजने तुम आयीं
धरती की धड़कन में बसता था यज्ञ-भुवन

लहरें बाष्पाकुल उठीं असीम, अधीर हुआ
कुछ द्रवित-द्रवित अंबर का वह प्राचीर हुआ
ज्वाला-समूह शत बार पिघलकर नीर हुआ
सब ओर तेज ही व्याप्त तिमिर को चीर हुआ

नारायण से नर को कल्पना निराली थी
सम्पूर्ण सृष्टि थी खुली कि जैसे कली खिली
जब सिंधु-अयन में मुझे खोजने तुम आयीं
धरती के कण-कण में बसता था सिंधु-अयन

मैंने देखा शतरूपा दीप्ति उतरती है
प्रतिबिंब-किरण सब ओर सहास उभरती है
मैं ही धरती में व्याप्त, मुझी में धरती है
मेरी आभा भव में विभूतियाँ भरती है

मैंने देखा—तुम मुझे ज्योति से छू-छूकर
पृथ्वी का रूप सँवार रही हो, गाती हो
जब भूमि-भुवन में मुझे खोजने तुम आयीं
ज्योतिर्मयि ! मुझमें ही बसता था भूमि-भुवन

पार्थिवता

तेरे पथ में जो गीत मिला, मैं उसी गीत का एक राग !

तेरे पथ में जो शून्य मिला, मैं वही गगन,
तेरे पथ में जो स्पर्श मिला, मैं वही पवन,
तेरे पथ में जो तेज मिला, मैं वही भुवन,
तेरे पथ में जो अश्रु मिला, मैं वही सुमन

करुणामयि ! तू मेरे सनेह की पाली री !
तू वह गरिमा जिससे मैं गौरवशाली री !

मेरा जीवन
पतझार कहीं, मधुमास कहीं
उच्छ्वास कहीं, उल्लास कहीं
मेरा जीवन !

जिसको तूने अपना ऐश्वर्य किया अर्पण,
अयि ज्वालाओं की प्रथम लालिमे ! सुख तेरा
खोजा करता दिन-रात जिसे मतवाला हो,
मैं वही मृत्यु के अधरों पर अंकित चुंबन की अमर आग।

तेरे परिचय का सूत्र, मुझे अभिमान मिला
मेरे भविष्य का तुझे अनूठा दान मिला
तेरे सपनों में मुझे एक अनुमान मिला
मेरे सपनों में तुझे एक दिनमान मिला

तेरी आँखों में मुझे मरण का ज्ञान मिला
मेरी आँखों में तुझे अमिट संधान मिला

मेरा जीवन
पृथ्वी का गोपन प्यार कहीं
भू से अंबर तक ज्वार कहीं
मेरा जीवन !

जिसको तूने अपना सौन्दर्य किया अर्पण
अयि नयनों के पहले सावन की श्यामलते !
जिसको छूकर तू बन जाती विद्युज्ज्वाला,
मैं वही आसु की पलक-पँखुरियों में पलनेवाला पराग !

तू प्यास सलोनी, मैं तेरे उर-मरु का स्वर
उड़ता-फिरता निर्बन्ध जलद के पंखों पर
मैं मानव, जिसको दुलराते तूफान-भँवर
तू मानवता मेरी करुणा, वेदना मुखर

मुझसे मिलने को तू रूपाभा-सी सजती
तेरे चरणों में बिजली की पायल बजती

मेरा जीवन
पूजा का पावन फूल कहीं

सुनसान चिता की धूल कहीं
मेरा जीवन !

जिसको तूने अपना कौमार्य किया अर्पण
अयि प्रथम मिलन की अंतिम मधुयामिनी सुघर !
तेरे अंचल की छाँह जिसे घेरे रहती
मैं उसी याद के दीपक की 'लौ' में जगमग तेरा सुहाग
तेरे पथ में जो गीत मिला, मैं उसी गीत का एक राग !

समाधान

मेरी साँसों को यदि तुम छूना चाहो
तो किरण बनो इस महातिमिर में एकबार !

संसार स्थूल यह जितना है
उतना ही सूक्ष्म चितेरा मैं
धड़कन के लघु-लघु विहगों का
अनदेखा एक सवेरा मैं
जो तुम्हें जगाने आता है
मिट्टी का चंदन घोल-घोल
सोने का तिलक लगाता है

तुम देख-देखकर जिस पथ को
आगे न बढ़ाते निज रथ को
मैंने उस पथ पर बिछा दिये हैं समाधान
उज्ज्वल उदार हे कलाकार

मेरी साँसों को यदि तुम छूना चाहो
तो किरण बनो इस महातिमिर में एकबार !

साम्पिक

तैर चुकी है तरणी मेरी बहुत बार इस धार पर

जोड़ चुका हूँ बहुत बार
नाता इस निर्मम तीर से,
बजा चुका हूँ बीन साँस की
छूकर मन की पीर से,
बाँध चुका हूँ छंद न जाने
कितने उस आकाश में,
कुछ हर बार लुटाया मैंने
चंचल वीचि-विलास में,

साक्षी है वेदना कि मैंने कितने चित्र सजाये हैं
कितने चित्र बनाये मैंने जनम-जनम की हार पर
तैर चुकी है तरणी मेरी बहुत बार इस धार पर

मैं सजकर निकला करता था
तारों की बारात में,
हरसिंगार बन कहीं बिखर
जाने को स्वर्णिम प्रात में,

कई बार है मुझे मिली
सौरभ की ज्वाला फूल से,
कई बार मैंने सीखा
सिटना किरणों की धूल से,

साक्षी है वंदना कि मैं सपनों को लेकर चलता था
जब स्वर सोये रहते थे जीवन के टूटे तार पर
तैर चुकी है तरणी मेरी बहुत बार इस धार पर

यह पहचानी हुई रात है
पहचाना दिनमान है,
यह पहचानी हुई हवा है
पहचाना तूफान है,
यह पहचानी हुई टीस है
पहचानी मुसकान है,
यह पहचानी हुई नियति है
प्रियम्वदा पहचान है,

साक्षी है अर्चना दीप का मैं सनेह हर बार बना
अपना सब कुछ न्योछावर कर परिचित एक पुकार पर
तैर चुकी है तरणी मेरी बहुत बार इस धार पर

सुनता आया यही कि
'आगे का पथ अगम अछोर है',
पर चलनेवालों के पथ में
सदा सवेरा, भोर है,
सुनता आया यही कि
'आगे तम—केवल सुनसान है',

पर विश्वास यही कहता
हिय की धड़कन ही गान है,

साक्षी है प्रार्थना कि मेरे बकने का क्रम रुका नहीं
मेरा तो अभिसार पुराना अनदेखे के द्वार पर
तैर चुकी है तरणी मेरी बहुत बार इस धार पर

उन्मुख

घिर आयी बरसात

घन घिर आये, घिर-घिर छाये, छाये री, दिन-रात

पलकों पर जब पावस उतरे,
चूम पुतलियाँ यमुना लहरे,

लहर-लहर में झलमल-झलमल श्यामल-श्यामल गात

पुरवैया में नैया डोले,
दूर पिया की वंशी बोले,

तीर - तरंग - धार - धाराधर — गूँजे सायं - प्रात

किस राधा की साध सम्हाले,
सुध मतवाली झूला डाले ?

साँस बनी लय, घन नूपुर-स्वन, नभ कदम्ब-तरु-पात
घिर आयी बरसात

मनुष्य

सूना-सूना हृदय
कि जिसका गान खो गया है

बुझा दीप या टूटा तारा,
मरु उदास या सूखी धारा,

वह तममय मंदिर, जिसका
भगवान खो गया है

अपना ही अवसान निराला,
साँस - साँस विध्वंसक ज्वाला,

डगमग - पग राही, जिसका
संधान खो गया है
सूना-सूना हृदय कि जिसका
गान खो गया है

प्रत्यय

ओ आराधन में डूबे मन
दीपक की बाती और तनिक उकसाओ,
'लौ' को सनेह से ऊपर और उठाओ

पग-चिह्न हेरते रहो
किसी मंदिर का द्वार न छूटे,
फूलों, काँटों की गलियों का
कोई शृंगार न छूटे,
तारों का कोई फूल, जलधि की
कोई धार न छूटे,
कोई वर्षा, कोई वसन्त
कोई पतझार न छूटे,

ओ आवाहन में डूबे मन
हर साँस समर्पण का सितार बन जाए,
हर तार बजे, झंकार उठे, लहराए

हिलकोरों का न नियम कोई
जीवन में ज्वार बहुत हैं,

आवेग प्रलय-घन बन जाते
ऐसे व्यापार बहुत हैं,
नीरव लगता है अंतरिक्ष
भीतर अंगार बहुत हैं,
आँधियाँ अनगिनत सोयी हैं
मद-घूर्ण बयार बहुत हैं,

ओ आवेदन में डूबे मन
पर्वत न फटे, बिजली की कौंध सम्हालो,
नीराजन की कोरों पर क्षितिज उठा लो

जितने अक्षत, उतने आँसू
हर आँसू व्यथा - लहर है,
जितने आँसू, उतने अक्षर
हर अक्षर कथा मुखर है,
जितने अक्षर, उतने प्रतीक
परिणति पूछो न किधर है,
पथ अपने ही मुड़ जाएगा
रूठा आराध्य जिधर है,

ओ आवेदन में डूबे मन
छलके न प्यास, झलके न प्रमाण जलन का,
धरती भी तो पर्याय किसी तड़पन का

पुतली की पावन सेज, सर्ग
पलकों ने नया सजाया,
हिय की लजवन्ती धड़कन ही
साक्षी है, रूप लजाया,

सौगंध तुम्हारी पवित्रता की,
चमक उठी क्यों काया।
सौगंध आँसुओं के जल की,
बोलो, क्या कोई आया।

ओ आलिंगन में डूबे मन
रोमावलियों से कह दो, वे रम जाएं,
सृष्टियाँ अकल्पित डोल रहीं, थम जाएँ

आत्मरति

आज तुम चिर-प्यास की कविता लिखो हे
साधना के स्वप्न में कर बंद
अर्चना ऐश्वर्य्य अपना दे रही
तादात्म्य के उल्लास की कविता लिखो हे

स्नेह की सुरभित कला के खोल दृग सविलास,
देह की दीपावली चुप देखता आकाश,
स्पर्श का रोमांच लेकर घूमती वातास,
पी समर्पण का अमृत-रस झूमता विश्वास !

वंदना के स्वप्न में कर बंद
अर्चना सौन्दर्य अपना दे रही
तादात्म्य के मधुमास की कविता लिखो हे

रूप की रूपाभ ज्वाला से उठा ज्या-घोष,
लुट रही संज्ञा लुटाकर संतुलन, संतोष,
नयन-मन-विलयन, न चिंतन का कहीं आक्रोश,
यम-नियम-संयम निगम-आगम-अगम बेहोश

अर्चना के स्वप्न में कर बंद
अर्चना कौमार्य्य अपना दे रही
तादात्म्य के उच्छ्वास की कविता लिखो हे

विराट व्यथा

ओ प्रज्ञा की अभिव्यक्ति,
हवा का अंचल तनिक हिला दो,
तम से प्रकाश को बाहर कर
मन-मानस-जलज खिला दो

तुमने जो प्यार दिया उसको
अनुभूति हुई न हृदय को,
अर्पित वंदन के छंद हुए
तम के देवता प्रलय को,

यह मानवता का भाग्य या कि है
सर्वनाश की लीला,
इन साँसों की सौगंध
काल का बंधन हुआ न ढीला,

ओ अमृतवाहिनी शक्ति !
गीत अपना विराट् वह गा दो,
धरती भय से थर-थर करती
अंबर को तनिक झुका दो

व्यंजना तुम्हारी ही वह थी
आँसू भी जब बोले थे,
सौन्दर्य तुम्हारा ही वह था
नभ ने जब दृग खोले थे,

अब्दाब्धि-लहरियाँ चितवन के
कोरों पर झूला करतीं,
लब्धियाँ तुम्हारी ओर देख
सकुचातीं और सिहरतीं,

मैला-सा लगता क्षितिज, भाल पर
भास्वर तिलक लगा दो,
गुंजित हो प्रतिपत्तूर्य सूर्य के
पथ की ज्योति जगा दो !

मिट्टी से मांगूं शब्द
शब्द से मांगूं दीप्ति तुम्हारी
तुम उगो बीज में, भर लें फिर
व्याप्तियाँ, सृष्टियाँ सारी,

नन्हे-नन्हे पग-चिन्हों से
नापो अभियान मरण का,
फिर बनो अनुष्टुप संगीते !
जीवन के अलंकरण का,

भा-पुंज-समन्वय की विभूति !
लाओ विराट के क्षण को,
साकार करो मिट्टी के घर में
उस अवतारी कण को

चंचल

तन को समेट लो अपने में
अब भोर हुआ आता है
मन को समेट लो अपने में
जाने क्यों घबड़ाता है

मेरे वारिधि ! मेरे महान् !
मैं बूँद एक चंचल हूँ,
जीवन समेट लो अपने में
यह ठहर नहीं पाता है

रसवंती

किरणों के नूपुर में नभ के
बज उठने की मंगल-वेला,
कण-कण में रूप छलकता-सा
सौरभ के छंदों का मेला,

मेरी संज्ञा भोली-भाली
यह उषा प्रथम रसवंती ही सब कुछ जाने
कौमार्य कली का
सिहर उठे क्यों बार - बार ?

सूनापन नीराजन का कवि,
अर्पण के गीतों का प्रहरी;
कहता परिणीता व्रीड़ा से
'क्रीड़ामयि ! तू ही कुछ कह री !'

मेरी संज्ञा भोली-भाली
यह निशा प्रथम रसवंती ही सब कुछ जाने
अवगुण्ठन का गोपन
खुल जाता किस प्रकार ?

अपनी धड़कन मैं सुनता हूँ
व्याप्तियाँ अपरिचित बोल रहीं,
अपनी आँखों से देख रहा
सृष्टियाँ अकल्पित डोल रहीं,

मेरी संज्ञा भोली-भाली
यह रसा प्रथम रसवंती ही सब कुछ जाने
साँसें कैसे
बन जाती हैं स्नेहाभिसार

किशलय गान

किशलय दल को मत तोड़ो तुम
संसार समर्पण का इसमें बसता है

बेगौर पवन बनकर आये
हलचल सब ओर मचाओगे,
रोमांचित कर तन को, मन को
सागर में लहर उठाओगे,

सौरभ के बंदी सपने जो
कुछ सोचा, उनका क्या होगा
किशलय दल को मत तोड़ो तुम
संसार समर्पण का इसमें बसता है

आँखों में जिसकी लाली है
उसका इतिहास न दुहराना,
सौन्दर्य न जाने क्या होता
विद्युत से छूकर दुलराना,

भोली संज्ञा को ज्ञात नहीं
बेसुधपन किसको कहते हैं

किशलय दल को मत तोड़ो तुम
आधार समर्पण का इसमें बसता है

सौ-सौ शिंजिनियाँ बजती हैं
रंगीन समय की धड़कन में,
आँधियाँ अनगिनत उठती हैं
मन के मंथित सूनेपन में,

मद किसमें, मादकता किसमें
यह कौन रहस्य बताएगा
किशलय दल को मत तोड़ो तुम
अंगार समर्पण का इसमें बसता है

कोई ऐसी ज्वाला होती
शीतलता जिसकी भाषा है,
कोई शीतलता होती है
ज्वाला जिसकी परिभाषा है,

दोनों को अपनी साँसों में
पालेगा कौन कला - प्रहरी
किशलय दल को मत तोड़ो तुम
शृंगार समर्पण का इसमें बसता है

नभ से पृथ्वी के परिणय का
मंगल - मुहूर्त जब आएगा,
तब कौन लाज की सिहरन का
संवेदन - गीत सुनाएगा,

अवगुंठन के भीतर छविमय
छिटकेगी कैसे अरुणाई
किशलय दल को मत तोड़ो तुम
त्योहार समर्पण का इसमें बसता है

दीपक की लौ में जाग-जाग
तारों की रात नवेली-सी
जब लुटी वायु के अंचल से
झाँकेगी गूढ़ पहेली-सी

तब कौन मिलन के मोद-छंद
चुन-चुन कर ओसों को देगा
किशलय दल को मत तोड़ो तुम
भिनसार समर्पण का इसमें बसता है

विश्वमय

आवरण हटाओ, इस प्रचंड
आलोक - जनित हलचल में
देखूँगा वह अपना स्वरूप
स्वर्णाभ सौर - मंडल में

रश्मियों और किरणों का
उपसंहार तनिक होने दो
हे रसग्राही ! रस का अभिनव
व्यापार तनिक होने दो

मैं आज उपासक नहीं, पुरुष हूँ,
स्थित आकाश - अनल में
देखूँगा वह अपना स्वरूप
स्वर्णाभ सौर - मंडल में

आवृत अभिमान चला चुपके
एकाकी हूँ, कुछ बोलो
अब यह व्यक्तित्व सनातन तुम
अपनी साँसों पर तोलो

जो बिखरा यहाँ-वहाँ था वह
प्रतिबिम्ब संभालो अपना
पृथकत्व समष्टि बनेगा अब
आवरण हटालो अपना

मैं आज उपासक नहीं, पुरुष हूँ
स्थित ब्रह्माण्ड - कमल में
देखूँगा वह अपना स्वरूप
स्वर्णाभ सौर - मंडल में

विराट कण

लब्धियों की रात को मत शेष करना

तुम धरोहर हो न जाने
किस अनोखी कल्पना की
कामना-निधि हो न जाने
किस अनोखी वंदना की

आज ऐसा एक क्षण मुझको मिला है
याकि एक विराट कण मुझमें खिला है
व्याप्तियाँ हँसतीं, सिहरती सृष्टियाँ हैं
और नर्तित मुग्ध-मन की वृत्तियाँ हैं

देखता ही मैं रहूँ, बोलूँ न कुछ भी

देवता! मेरे नयन अनिमेष करना

चिंता

संसार लग रहा है पतझार की गली-सा
विच्छिन्न-तरु-लता के शृंगार की गली-सा
रौंदा जिसे नियति ने उस प्यार की गली-सा
पीड़ा-भरी जलन के त्योहार की गली-सा
लूटी हुई सुहागिन झंकार की गली-सा
विष-पूर्ण काल-अहि के फुँकार की गली-सा

दिन की चिता जलाकर
दिनमान सो गया है
सौन्दर्य खो गया है

यह रात रेंगती-सी छाया समय-विकिर की
आकृति कलंकिनी या पापी कुटिल तिमिर की
अथवा विभीषिका है विध्वंस के विविर की
या ग्लानि है समर से भागे हुए मिहिर की
या राख प्रार्थना के जलते हुए शिविर की
सुषमा जहाँ बसी थी मधुऋतु-शरद-शिशिर की

अभिशाप शाप विधु को
विष-बीज बो गया है
सौन्दर्य खो गया है

कुछ पूछतीं लताएँ गर्जन-भरे पवन से
कुछ पूछतीं दिशाएँ उड़ते हुए धुवन से
कुछ पूछतीं व्यथाएँ विस्मित चकित नयन से
कुछ पूछतीं पुतलियाँ वज्राभ आवरण से
कुछ पूछती धरित्री तपते हुए गगन से
कुछ पूछती प्रतीक्षा अपने अधीर मन से
मन पूछता स्वयं से
क्या आज हो गया है
सौन्दर्य खो गया है

आलोक का पुजारी आलोक में पला जो
आलोक का सनेही आलोक में ढला जो
आलोक की ध्वजा ले आलोक-पथ चला जो
आलोक के शिखर पर आलोक-सा जला जो
आलोक के स्वरों में आलोक की कला जो
ग्रह बार-बार पिघले, अबतक न पर गला जो
देहात्म के नगर से
लौटा न जो गया है
सौन्दर्य खो गया है

रूपक

आकाश बना अभिसार
सृष्टि साकार प्रतीक्षा है
हर सांस अशेष पुकार
सृष्टि साकार प्रतीक्षा है
हर प्रात निवेदित प्यार
हर साँझ मधुर मनुहार
हर स्वप्न मिलन-त्योहार
सृष्टि साकार प्रतीक्षा है

तारों में जलता स्नेह
जल रही दीप-सी देह
हर आँसू है शृंगार
सृष्टि साकार प्रतीक्षा है

अर्पण की वेला मौन
रोके जीवन को कौन
हर क्षण - पल उपसंहार
सृष्टि साकार प्रतीक्षा है
आकाश बना अभिसार
सृष्टि साकार प्रतीक्षा है

तरङ्गायित

नयनों में सपने जब आते
गगन छलक पड़ता है

नूपुर के रव से मुखरित कर
तारों की अमराई
लहराने इठलाने लगती
रस से भरी जुन्हाई
कली - कली के अंग - अंग से
मदन छलक पड़ता है.

खुल जातीं पंखुरियाँ जैसे
खुले कंचुकी - बन्धन
सजल पुतलियों में खुल जाता
मन - मंथन का गोपन
सोई सुरभि सम्हाल न पाती
पवन छलक पड़ता है

सिहर - सिहर उठती तन्मयता
संज्ञा के अंचल में

संज्ञा सिहर-सिहर उठती
साँसों की मृदु हलचल में
भावों का भव भर-भर आता
भुवन छलक पड़ता है

चिरकांक्षित

गगन किसी अनुराग - रँगी
चितवन की सेज अमोल

फूल मधुर मनसिज के तारे
स्वर में जिनके स्नेह पुकारे
मन की नर्तित लहर-लहर पर
पल - पल छिन - छिन डोल

लिपट - लिपट वंदन - चंदन में
पिघल अगरू के नीराजन में
प्राणों का गोपन बन जाता
गीत, अगीत अबोल

कितनी बार जलधि लहराया
सिहरी चंद्र - चाँदनी - छाया
कितनी बार अकल्प सृष्टियाँ
बनीं कल्पना - दोल

यह सुहाग की बत्ति नवेली
सखी साधना, साध सहेली

देख रही पग, अधरों, दृग को
समद - तुला पर तोल
मगन किसी अनुराग - रँगी
चितवन की मंजु अमोल

तन्मय

मन के मधुर जागरण में मैं
तुम - सा ही अनजान दीखता

सुमन - सुमन में खिला हुआ - सा
भुवन - भुवन में मिला हुआ - सा
दृग में दृग, चितवन में चितवन
अनदेखा प्रतिमान दीखता

रूप - सुधा से धुले कोर पर
रश्मि-चरण-विजडित-हिलोर पर
सुधियों की सीमा के आगे
बेसुध - सा संधान दीखता

नभ की श्रांत शान्त हलचल में
वलयित-क्षितिज जलधि-अंचल में
युग-युग का अविजित अभियानी
हारा - सा तूफान दीखता

मिट्टी एक एक पत्थर है
नीरवता दोनों का स्वर है

मूर्ति सामने खड़ी मूर्ति के
दोनों में भगवान देखना

आवर्त-हिलोर

मन ! तू ही कह
अगला विराम किस कोर पर

यह नाव प्यार का भार लिए चलती है
शृंगार अदेखा छू - छू कर अंचल से
दृग के दीपक की कंपित 'लौ' जलती है

शत - शत कल्पों का स्वप्न अधूरा लेकर
जीवन प्रतिपल तिरता आवर्त - हिलोर पर

संज्ञा मनुहारे और निहारे जिसको
सौन्दर्य देवता का वह बड़ा हठीला
हिय की धड़कन दिन-रात पुकारे जिसको

पलकें मदमाती - सी मुँद - मुँद जाती हैं
कल्पना सिहरती—क्या होगा उस छोर पर ?

बाँसुरी किसी की बजती प्रेम-अधीरा
हर साँस उधर खिंचती जिसके जादू से
हर याद बन रही बिरह-मिलन की मीरा

बिछली पड़ती है आयु बिछलती जैसे
रजनीगंधा की सुरभि हवा की डोर पर
मन! तू ही कह
अगला विराम किस छोर पर

लगन

आवृत कर धरती के तन को
घन घेर - घेर लेते मन को
हे सपनों के आकाश ! चंद्रमा
ओझल हो न नयन से

साथी यह एकाकीपन का
गायक हर नीरव सिहरन का
मेरे उर के उच्छ्वास ! न रूठे
कलिका अतिथि पवन से

तुम गूँज रहे ज्यों रश्मि-ऋचा
प्रतिपल चलता है काल खिंचा
हे संज्ञा के अधिवास ! न भटके
सुरभि अशेष सुमन से

यह धड़कन ही जाने किस क्षण
प्रिय कर लेगा चुपचाप वरण
हे दीपक के उल्लास ! न छूटे
'लौ' की लगन गगन से

देवता की याचना

इतना विस्तृत आकाश—अकेला मैं हूँ
तुम अपने सपनों का अधिवास मुझे दो

नीला-नीला विस्तार, हिलोरों में यों ही बहता हूँ
सूनी-सूनी झंकार, न जाने क्यों उदास रहता हूँ
यह अमृत चाँद का तनिक न अच्छा लगता
प्रिय ! तुम अपनी रसवंती प्यास मुझे दो

कण-कण में चारों ओर छलकती नृत्य-चपल मधुवेला
झूमे बेसुध सौन्दर्य, लगा है मधुर रूप का मेला
ऐसी घड़ियों का व्यंग्य न सह पाता हूँ
तुम अपने प्राणों का उच्छ्वास मुझे दो

वंदन के चंदन से शीतल छंदों की क्यारी-क्यारी
सब कुछ देती, देती न मुझे मैं चाहूँ जो चिनगारी
रम जाऊँ मैं जिसके अक्षर - अक्षर में
वह गीली - पलकों का इतिहास मुझे दो

यह देश तुम्हारे लिए बसाया मैंने सुघर-सलोना
कोमल पत्तों के बीच जहाँ ओसों का चाँदी-सोना

उतरूँगा सुख से मैं अंकुर - अंकुर में
तृण - तरु में मिलने का विश्वास मुझे दो
इतना विस्तृत आकाश—अकेला मैं हूँ
तुम अपने सपनों का अधिवास मुझे दो

देवता से प्रार्थना

प्रिय ! बंद न कर देना वातायन अपना
तन का बंदी मैं बन समीर आऊँगा

कितने फूलों का प्रात—सुरभि का दे न सका उपहार
कितने तारों की रात—अभागिन बन न सकी मनुहार
कितने ओसों की बात—न पूरा हो पाया शृंगार
कितने सपने अज्ञात—एक भी हो न सका साकार

कैसी अपूर्णता तुमने चुपके दी थी
अब यह थाती है देव ! तुम्हें लौटाने
मैं बन नभ की अव्यक्त पीर आऊँगा

अनजान क्षितिज में घिरे मेघ—रिमझिम बरसे मल्हार
अनजान हृद के कमल-कोष पर—भौंरों का गुंजार
अनजान दिशा से उमड़—फैल जाती मीठी झंकार
अनजान कूल को चूम-चूम—नाचे लहरों का प्यार

अनजान तुम्हारी साँसों की वाणी से
परिणीता संध्या का भविष्य लिखवाने
लेकर युग-युग की सुधि अधीर आऊँगा

तुम प्रलय - सृजन के बीच एक शाश्वत जीवन - संचार
तुम आदि - अंत के बीच एक शाश्वत परिव्याप्ति अपार
तुम प्रकृति - पुरुष के बीच एक शाश्वत अखंड व्यापार
तुम जन्म - मरण के बीच एक शाश्वत कंपनमय तार

निष्कंप पुतलियों की अनिमिष छाया में
अर्पण के बंधन - मुक्त विसर्जित क्षण - सा
मैं बन अविकल - वंदना - नीर आऊँगा
प्रिय ! बंद न कर देना वातायन अपना
मैं बन अदृश्य - पथ का समीर आऊँगा

नीराजन

यदि अपने तन-मन की ज्वालाओं को बटोर

मैं गीतों का निर्माण करूँ

साँसों के तारों से छूकर

जीवन की रिक्त विकलता में

सुकुमार सुरीले प्राण भरूँ

तो यह बेसुरी कुटिल दुनिया बोलो, क्या देगी मोल ?

पर बंधु ! सुनो, इतना सच है

उन गीतों के माध्यम से मैं

लिख दूँगा गीत पराग-भरे

उस चिर-प्रियत्व का अभिमान

जिसका हर अंकुर विश्व-व्याप्ति हर रश्मि एक आह्वान

जिसकी हर लहर सम्हाल रही तूफानों में जलयान

जय उस अनदेखी ज्वाला की

उन अमर क्षणों की जय, जिनकी

छाया में स्वर-संधान हुआ

पथ पर मेरा आह्वान हुआ

जय उन अनदेखी किरणों की
जिनके पग-नख के विस्फुलिंग
मेरी वाणी के रथ पर चलते रूपवान

जिस पर परदा है पड़ा हुआ नभ का अभेद्य
वह आग तड़पती हुई तनिक उकसा दूँ
जो कोलाहल है दबा दिशाओं के चरणों के नीचे
मैं उसे पुकार जगा दूँ

जिस वेगवती धारा को पर्वत नहीं दे रहे बढ़ने
मैं अपनी विद्युत् से उसकी गति को छूकर
तूफानी ज्वार उठा दूँ

शृंखला प्यार की टूटी-सी बिखरी-सी जो
मैं उसे जोड़कर नूतन हार बना दूँ

तो बंधु! सुनो, मैं लिख दूँगा
वह गीत कि जो विष और गरल
पी-पीकर भी मुस्काएगा
मंदिर के पथ में पड़ा हुआ

जैसे अर्पण का पुष्प नवल
आकार मृषा—है रूप मृषा
यह हार तर्क की भारी

यह मिट्टी का अस्तित्व लिये चल रहा जिसे
साक्षी है वह चिनगारी
मैं नहीं आज का ही मनुष्य
मैं नहीं आज की ही कृति हूँ

चा युग - युग का जिसका पूर्ण कर देगी, वह
निस्सीम समय की आकृति हूँ
मेरा जीवन संगिनी आयु के अंचल में
हिय की हर धड़कन की सम्हाल

दौड़ा जाता झंकृत करने इस समारोह के तार
मेरा भविष्य जिसके सपनों का रेखा - पट सुकुमार

मेरा हर अक्षर उसी पर्व का वंदन है
हर शब्द अर्चना — और छंद
हर गीत मधुर नीराजन है

जाने कैसे यह प्यार हुआ करता है

मेरे मन की रिक्तता विकल
जब छंद तुम्हारा बन जाती
जब गीत अपरिचित लिखते तुम
तन्मयता मधुर-मधुर गाती

तब प्राणों के सम्मोहन में
हे देव ! तुम्हारा अनदेखा
त्योहार हुआ करता है
जाने कैसे यह प्यार हुआ करता है

आलोक-धुली तम-छाया में
जब स्वप्न स्वप्न से मिलते हैं
चंद्रमा, सूर्य, जगमग तारे
जब बिना वृन्त के खिलते हैं

तब पलकों के नीराजन में
हे देव ! तुम्हारा अनदेखा
अभिसार हुआ करता है
जाने कैसे यह प्यार हुआ करता है

धरती के शब्द बिखर जाते
जब टूट क्षितिज की माला से
जब जन्म-मरण की क्षुद्र परिधि
जलती अपनी ही ज्वाला में

तब मेरी पुतली की लौ में
हे देव! तुम्हारा अनदेखा
शृंगार हुआ करता है
जाने कैसे यह प्यार हुआ करता है

मेरे प्राणों से सटी हुई
साँसों के लघु हिलकोरों पर
यह सृष्टि तूल-सी उड़ती है
जब आदि-अंत के छोरों पर

तब मेरे आत्म-विसर्जन में
सौन्दर्य तुम्हारा अनदेखा
साकार हुआ करता है
जाने कैसे यह प्यार हुआ करता है

परिणति

ओ रसभीनी कांति रात की
आऊँगा तारों के नूपुर, वलय, किंकिणी गढ़ने
ओ रसभीनी कांति प्रात की
आऊँगा माथे की बिंदी में सूरज को मढ़ने

ओ निशीथ की शाश्वत संगिनि
आऊँगा मैं चंद्र-मल्लिका
का मधु-कोष लुटाने
ओ निशांत की शाश्वत रंगीनि

आऊँगा हर किरण-पंक्ति में
अक्षर नया बिठाने

शांत रहो तुम, शांत रहो तुम
कहीं प्रतीक्षा का दीपक चुपके जलता है
उसी ओर मेरे जीवन का रथ चलता है

हर अंकुर है साँस एक अनमोल
पृथ्वी की ममता का नन्हा-सा प्रतीक अनबोल
ऊर्जस्वल कि हवा बन जाती स्वयं प्रेम-हिंदोल

ओ अदृश्य के कोलाहल ! तूफ़ान !
ओ भविष्य के मेघ-मंद्र आह्वान !
झलक रहा सौन्दर्य सृष्टि के कण-कण में जो
उसका अनदेखा अन्तरात्मा
हर अंकुर का स्वप्न सलोना

हिय की धड़कन में पलता है
उसी ओर मेरे जीवन का रथ चलता है

ऐसे पुष्प अनेक कि जो हो सके न अर्पित
ऐसे दीप अनेक कि जो हो सके न ज्योतित
ऐसे तार अनेक कि जो हो सके न झंकृत
ऐसे गीत अनेक न जो हो सके निवेदित

ओ अचेत उत्कंठाओं की आग !
ओ अनजाने और अधूरे राग !

ऐसी हर संज्ञा की परिणति जाग रही है, जाग रही है
जहाँ ज्योति के स्पर्श मात्र से

मोम-समान प्रलय गलता है
शांत रहो तुम, शांत रहो तुम
कहीं प्रतीक्षा का दीपक चुपके जलता है
उसी ओर मेरे जीवन का रथ चलता है

शब्द

कल्प-कल्प के ऊर्जस्वल कवि
तुम लेखनी चलाओ
एक शब्द मैं भी हूँ, चाहो,
जहाँ मुझे बैठाओ !

एक शब्द आकाश, करोड़ों
ग्रह - पिण्डों का काव्य
लक्ष-लक्ष भावों का छवि-पट
असम्भाव्य सम्भाव्य

एक शब्द वातास अनगिनत
गीतों की झंकार
स्वर का, लय का, छंदों का
अपलक अवृन्त आधार

एक शब्द अंगार रूप का
व्याख्याता अनिमेष
जिसकी ज्वाला के प्रतीक
प्रतिमान अनन्त अशेष

एक शब्द निस्सीम सिन्धु
गंभीर, क्षुब्ध, उत्ताल
बूँद-बूँद मोती-मुक्ताहल
लहर-लहर जयमाल

एक शब्द पृथ्वी, समष्टि की
आकृति का आख्यान
अधरों पर स्मित, दृग में जीवन
अंचल में वरदान

एक शब्द होता, हविष्य, हवि
हविर्धूम, हवि-दान
एक शब्द भव, एक शब्द
संपूर्ण भविष्य-विधान

एक शब्द तुम भी हो गायक!
अपनी रुचि से गाओ
एक शब्द मैं भी हूँ, चाहो
जहाँ मुझे बैठाओ

सौरभ का सुकुमार सेज के
पास पहुँचकर जब रुक जाना

मुझे देख मेरी ही छाया
अनदेखी छवि-सी मुस्काती
मेरे तन के दीपक की लौ
रजनी के मन में बस जाती

फैल रही हैं रजत-रश्मियाँ
होता है शृंगार किसी का
निर्झर की लघु लहर-लहर पर
होता है अभिसार किसी का

मेरे स्वप्न सिमट जाते हैं
तम के गाढ़े आलिङ्गन में

सुनता हूँ, पर जान न पाता
हिय की धड़कन किसे बुलाती
मेरे तन के दीपक की लौ
रजनी के मन में बस जाती

अंधकार को अंधकार की
ज्वाला चुन-चुनकर देता हूँ
अंधकार से अंधकार में
खोया पथ वापस लेता हूँ

धरती की आँखों में आँखें
डाल एकटक देख रहा हूँ

कहीं पुरानी सज्जा बैठी
नयी चेतना आगे आती
मेरे तन के दीपक की लौ
रजनी के मन को उकसाती

एक सुंदरी नाच रही है
गिरि-शिखरों के ताल-ताल पर
बाँध चाँदनी को नूपुर में
थिरक रही है डाल-डाल पर

वह मेरी अनुभूति, वेदना
वह मेरी भावना सुरीली

आँक-आँक कर विपुल व्याप्तियाँ
कण-कण में फूली न समातीं
मेरे तन के दीपक की लौ
रजनी के मन को अति भाती

मुझसे भिन्न नहीं नभ-मंडल
याकि चंद्र-मंडल मतवाला
मुझसे भिन्न नहीं भू-मंडल
भू-मंडल का तिमिर, उजाला

तम आता है, तम जाता है
क्रम यह योंही चलता रहता

तम की आकृति से निकाल कृति
मेरी आग नित्य चमकाती
मेरे तन के दीपक की लौ
रजनी के मन में भर जाती

विसर्जन

तुम जब मिलो, तुम्हारा सुख
मेरे मन का जलजात हो
मैं जब मिलूं, प्रकृति पिघले
कोई अनहोनी बात हो

चाँद अमृत - रस बरसाता है
जब दो प्रेमी मिलते
अधर-अधर के पास पहुँचते
देख सितारे खिलते

वक्ष वक्ष से सटता है
धरती का हृदय उछलता
उच्छ्‌वासों को लिये गगन का
विरही शून्य मचलता

चितवन में चितवन बल खाती
ज्यों दीपक की बाती
साँस साँस से लिपट-लिपटकर
इतराती - इठलाती

मेरी काया को छू-छूकर
सृष्टि सृष्टि में सिमटे
बिजली की पायल में झन-झन
झंकृत झंझावात हो

कई बार आकाश उतरकर
धरती पर आया है
कई बार ऊपर उठ दौड़ी
धरती की छाया है

कई बार चंचल लहरें ही
जीवन-पोत बनी हैं
कई बार बेकलियाँ ही
गीतों का स्रोत बनी हैं

कई बार ओसों की फुहियों ने
शृंगार रचाया
कई बार संध्या-ऊषा ने
बंदनवार सजाया

अवगुण्ठन-पट आशु उठाए
जब मेरी पलकों में
हर प्रकाश का पिण्ड
सजीले सपनों की बारात हो

तन्मयता के अंचल में पथ
अंकित महामिलन का
मधुर लग्न छवि-दर्शन का
छवि-दर्शन के दर्शन का

वाणी नीरव, नीरवता के
लोचन खुले हुए हों
आदि - अंत के छोर रूप के
जल में घुले हुए हों

चिर-विराम के कल्प-तल्प पर
स्वप्न अभेद सँजोए
कुछ खोए-से कुछ संचित-से
प्राण ! रहो तुम सोए

नभ में दीप विसर्जन का
संझा का वह अहिवात हो
मैं जब मिलूँ, प्रकृति पिघले
कोई अनहोनी बात हो

मुखर शून्य

ओ पत्तों की धड़कन के कवि
वन के एकाकीपन !

लतिकाओं की सिहरन के कवि
ओ वन के रस-गोपन !

कलियों की चल-चितवन के कवि
ओ वन के सम्मोहन !

ओ ओसों की प्रतिमा के कवि
वन के छंदित दर्शन !

ओ निर्झर की लहरों के कवि
वन के चिर आकर्षण !

खँडहर की नीरवता के कवि
ओ वन के सम्भाषण !

गिरि - शृंगों की चिन्ता के कवि
ओ वन के सम्बोधन !

अभावों की ज्वाला के कवि
ओ! वन के उद्बोधन!

आज देवता तुम्हीं बनो वन के सौंदर्य सचेतन!
नीराजन की वेला में खाली न रहे मेरा मन!!

आश्वस्त

मैं तो साँसों का पंथी हूँ
साथ आयु के चलता
मेरे साथ सभी चलते हैं
बादल भी, तूफान भी

कलियाँ देखीं बहुत, फूल भी
लतिकाएँ भी, तरु भी
उपवन भी, वन भी, कानन भी
घनी घाटियाँ, मरु भी
टीले भी, गिरि-शृंग-तुंग भी
नदियाँ भी, निर्झर भी
कल्लोलिनियाँ, कुल्याएँ भी
देखे सरि - सागर भी
इनके भीतर इनकी-सी ही
प्रतिमाएँ मुस्कातीं
हर प्रतिमा की धड़कन में
अनगिनत कलाएँ गातीं

अनदेखी इन आत्माओं से
परिचय जनम - जनम का

मेरे साथ सभी चलते हैं
जाने भी, अनजान भी

सूर्योदय के भीतर मेरे
मन का सूर्योदय है
किरणों की लय के भीतर
मेरा आश्वस्त हृदय है
मैं न सोचता कभी कौन
आराध्य, किसे आराधूं
किसे छोड़ दूं और किसे
अपने जीवन में बांधूं
दृग की खिड़की खुली हुई
प्रिय मेरा झांकेगा ही
मानस - पट तैयार, चित्र
अपना वह आंकेगा ही

अपने को मैं देख रहा हूं
अपने लघु दर्पण में
मेरे साथ सभी चलते हैं
प्रतिबिम्बन, प्रतिमान भी

दूर्वा की छाती पर जितने
चरण - चिह्न अंकित हैं
उतने ही आंसू मेरे
सादर उसको अर्पित हैं
जितनी बार गगन को छूते
उन्नत शिखर अचल के
उतनी बार हृदय मेरा

वदन के जल - सा छलके
जब-जब जलधि सामने आता
बिंदु - रूप में अपने
तब - तब मेरी संज्ञा लुटती
लुटते मेरे सपने

आकृतियाँ, रेखाएँ कितनी
इन आँखों में पलतीं
मेरे साथ सभी चलते हैं
लघु भी और महान भी

पथ में एकाकीपन मिलता
वही गीत है हिय का
पथ में सूनापन मिलता है
वही पत्र है प्रिय का
दोनों को पढ़ता हूँ मैं
दोनों को हृदय लगाता
दोनों का सौरभ - कण लेकर
फिर आगे बढ़ जाता
हर तृण में, हर पत्ते में
सुनता हूँ कोई आहट
लगता है हर बार कि मेरी ही
आ रही बुलाहट

अकुलाहट चाहे जैसी हो
सीमा पर तारों की
मेरे साथ सभी चलते हैं
स्वर भी, स्वर-संधान भी

किसका लूँ मैं नाम और
किसकी कविताएँ गाऊँ
किसका मैं सौन्दर्य बखानूँ
किसका पता बताऊँ
शब्द-कोष जब-जब मैं देखूँ
स्वयं शब्द बन जाऊँ
जब - जब अक्षर पहचानूँ
तब - तब मंत्रा बिसराऊँ
हर रेखा में चित्र विलोकूँ
चित्राधार बनाऊँ
यह चित्रों का समारोह
दृग खोलूँ, पलक गिराऊँ

मेरा रक्त, त्वचा यह मेरी
और अस्थियाँ सोलें
मेरे साथ सभी चलते हैं
आदि और अवसान भी

अनिवार्य मैं

मेरा जीवन अनिवार्य कि तुम
पूनम का अनुपम चाँद बनो

मैं यहाँ, वहाँ, सब कुछ झेलूँ
मरु कहीं, कहीं तरु प्राण बनूँ
संतप्त तृषाकुल ज्वालाकुल
निष्कंठ कहीं पाषाण बनूँ
सीमा के अंचल का दीपक
दीपक की लौ का प्यार बनूँ
संदेह कहीं, संदिग्ध कहीं
परिचय की कहीं पुकार बनूँ

चाहिए तुम्हें भी श्लोक एक
जो मन के तारों पर झूले
मेरा जीवन अनिवार्य कि तुम
अपनी ही कोई याद बनो

यह अंकुर है, वह अक्षयवट
यह कली और वह फूल खिला
यह टहनी है, वह डंठल है
फुनगी से टूँसा उधर मिला

वह सागर है, यह तुनुक बूँद
वह बादल है, यह वर्षा-कण
यह धूल और वह धूलध्वज
यह अलंकार, वह अलंकरण

अनुनय हारा, आराधन भी
अन्वय हारा, अन्वेषण भी
मेरा जीवन अनिवार्य कि तुम
मौलिक रहकर, अनुवाद बनो

ध्वंसावशेष की मर्म-कथा
इतिहास सम्हाले चलता है
खँडहर की अपलक आँखों में
सुधियों का वैभव पलता है
वह शिला-लेख मैं देख रहा
बंदी उसमें अक्षर कितने
यह भोजपत्र मैं पढ़ता हूँ
सोए हैं छंदित स्वर कितने

अस्थियाँ, रक्त, संदीप्ति, त्वचा
विश्वास चाहता चित्र यही
मेरा जीवन अनिवार्य कि तुम
अभिलेख नहीं, संवाद बनो

"प्रतिमाएँ रखतीं जीभ नहीं
पूजा न पहुँचती पूज्य जहाँ
जिस ठौर अर्चना झुकती है
पत्थर ही मिलता खड़ा वहाँ
मस्तिष्क नहीं मंदिर कोई
पर वह दीवाने रक्तप का

सज्ञा की वाणी हृदय नहीं
वह गीत अनर्गल मद्यप का"

यह गरल जहाँ भी मिलता है,
जो भी देता पी लेता हूँ
मेरा जीवन अनिवार्य कि तुम
इस भाँति न मिथ्यावाद बनो

आरोपित

चाँद और सूरज रीते हैं
मेरा जीवन-रस पीते हैं
इसीलिए
नभ उतर रहा इन आँखों की भाषा में

शून्य और अवकाश छलकते
मुझमें अगणित विश्व झलकते
इसीलिए
मैं ही आरोपित जग की अभिलाषा में

दिन दे न सका कुछ भी मन को
रात सिंगार न पायी तन को
इसीलिए
मैं स्वप्न बना शाश्वत की परिभाषा में

मानसी

मेरे मन की मूर्त्ति सामने
खड़ी माँगती दान
इधर मुझे झकझोर रहा है
भावों का तूफ़ान

चिनगारी दूँ, ज्वाला दूँ, या
दूँ जलने की रीति
दूँ करील-वन की कलापिनी
या मरु की उद्गीति

कादम्बिनी-कूल का कलरव
या निदाघ की प्यास
या दूँ पतझर का पराग
निर्जन का अनिलोच्छ्वास

जानी-पहचानी स्मृतियाँ दूँ
या दूँ स्वप्न अजान
मेरे मन की मूर्त्ति सामने
खड़ी माँगती दान

—:o:—

नभ की अनिमिष व्यापकता के
नयनों का काजल हूँ
सतरंगी किरणों की चूनर
विद्युत् की हलचल हूँ
कली-कली के अंग-अंग की
लाज-भरी अरुणाई
अथवा हूँ कुंचित लहरों की
रस-सिंचित तरुणाई

ऊषा का घूँघट हूँ या
सन्ध्या का असित वितान
मेरे मन की मूर्त्ति सामने
खड़ी माँगती दान

सागर की शाश्वत पुकार, या
पृथ्वी की धड़कन हूँ
चारु-चंद्र की रजत-राशि
या तप्त सूर्य-कंचन हूँ
तारों की निष्पलक ऋचा हूँ
तृण-तृण का वंदन हूँ
कवि का हूँ कल्पना-सेतु
या छवि का नीराजन हूँ

रति की लोल लालसा हूँ
अथवा विरक्ति वरदान
मेरे मन की मूर्त्ति सामने
खड़ी माँगती दान

वर्त्तमान हूँ या भविष्य हूँ
या निःशब्द अतीत

या अपराजित आत्मदीप्ति हूँ
चिर-नव कालातीत
संबोधित बोधित संज्ञा हूँ
या प्रज्ञा परिणीत
युग-युग की हूँ परम्परा
या अपरम्परा अगीत

सृति हूँ, संसृति हूँ, आवृति हूँ
प्रतिकृति या प्रतिमान
मेरे मन की मूर्ति सामने
खड़ी माँगती दान

मैं तो दो नन्हीं सासों का
एक अकिंचन दानी
दो साँसें—जो बाँध रहीं
धरती से नभ तूफानी
इन्हीं सुहागिन साँसों का
दीपक तम में जलता है
इन्हीं सुहागिन साँसों के
रथ पर अदृश्य चलता है

लो इनका मधु, स्वर इनका
इनका विराट् आह्वान
मेरे मन की मूर्ति सामने
खड़ी माँगती दान

समय-पंख पर इन दो साँसों
का विहंग तिरता है
लघु-लघु प्राणों में पथ का
संधान लिये फिरता है

इन्हीं सुहागिन साँसों का
आश्वासन, प्यार तुम्हें दूँ
इन्हीं सुहागिन साँसों का
उत्सव, त्योहार तुम्हें दूँ

लो इनकी गति की गरिमा
श्रुति का अश्रुत अनुमान
मेरे मन की मूर्ति सामने
खड़ी माँगती दान

साँसों के झूले पर झूलो
ओ सपनों की रानी
राका-पति, दिन-पति, ऋतुपति,
रति-पति मिल लिखें कहानी
बुद्धि-विवेक और प्रतिभा-धन
दें मैं जब अभिमानी
अंतिम शब्द लिखूँगा तब मैं
दो साँसों का दानी

अंतिम शब्द—वही होगा युग-
युग का अर्थ-विधान
मेरे मन की मूर्ति सामने
खड़ी माँगती दान

भावों में अमरत्व, विचारों में
देवत्व सम्हालो
यह लो मेरी आयु—अंक
इसमें है अमृत निकालो
जन्म-मरण दोनों मेरे हैं
दोनों को अपना लो

नियति, भाग्य, भवितव्य इन्हें लो
अपने योग्य बना लो

मेरी काया लो मायामयि
पंचतत्व का गान
मेरे मन की मूर्त्ति सामने
खड़ी माँगती दान

कल की कविता तुम्हीं रूपमयि !
लो मेरा विश्वास
कल की ज्योति तुम्हीं से अपना
माँगेगी इतिहास

सृष्टि सृष्टि की तुम्हीं सुहासिनि !
चिर - यौवना अधीर
कल की शांति, तपस्या, अर्चा
तुम्हीं वंदना - नीर

आज मानसी मेरी तुम हो
कल की चिति अनजान
मेरे मन की मूर्त्ति सामने
खड़ी माँगती दान

जिस मिट्टी का एक गीत मैं
तुम उसकी वाणी हो
आत्माएँ जिसको दुलरातीं
तुम वह कल्याणी हो
अगणित रेखाओं से मंडित
तुम मृदु एकाकृति हो
स्वस्ति स्वधा हो, स्वाहा हो
संकल्प-स्वामिनी धृति हो

छन्द का राज-मुकुट ओ सुंदरि;
भाषा का परिधान
मेरे मन की मूर्ति सामने
खड़ी माँगती दान
इधर मुझे झकझोर रही है
भावों का तूफान

आराधनीया

वह प्रतीकों की अधिष्ठात्री
प्रणति दो

जो न बन पाया विभा का
पिण्ड उसकी भव्य आकृति
बन चुका जो, स्वस्ति उसकी
मेघ-रव-गंभीर हुँकृति
बाल-रवि की अरुण बिंदी
भाल पर, किंजल्क लाली
लोक जिसकी वंदना का
श्लोक वह मुसकानवाली
गोद में साश्चर्य बैठा
वर्तमान निहारता छवि
गत-अनागत के दृगों से
झाँकते हैं अनगिनत रवि
साथ में प्रज्ञा कनक की
रश्मि-सी दिन - रात खेले
आरती के दीप नाचें
ज्योति की झंकार ले-ले

देवता के स्पर्श से पुलकित
मनुज की चेतना यह
विश्व के मानस-सलिल की
हंसिनी संवेदना यह
श्रेयसी है यह सुधा-दात्री
प्रणति दो

ताकती तो सैकड़ों
नक्षत्र बनते, चित्र बनते
भावनाओं से छलककर
भाव ही वादित्र बनते
मुस्कुराती तो गगन-तल
रूप-पारावार बनता
क्षितिज उद्वेलित सुरभि की
लहर बनता, ज्वार बनता
बोलती तो शब्द बनते
छंद बनते, गीत बनते
प्रेरणा की तूलिका से
सर्ग समयातीत बनते
सांस लेती तो अचल के
शिखर पर उल्लास चलता
धरणि के आकुल स्वरों में
तरुण चिर विश्वास चलता
यह महान भविष्य की
संभावना, संवर्द्धना है
अर्चना - अधिकारिणी
आराधनीया सर्जना है
धृत्वरी यह धृतिमति धात्री
प्रणति दो

फैलता आलोक चारों
ओर, रेखाएँ संवरतीं
चूम आत्मा के किरण-कण
रेत पर कलियाँ उभरतीं
स्नेह के घन सजल चारों
ओर उड़ते जा रहे हैं
गीत खग नव गा रहे हैं
पथिक पथ नव पा रहे हैं
यह सुनीता भर रही है
व्याप्तियाँ अपने सुयश से
माधुरी बरसा रही है
रस-भरे अक्षर - कलश से
यह पुनीता मुक्त कर से
कल्पना - धन बाँटती है
श्वास, जीवन-रक्त, प्रतिभा,
प्राण, धड़कण बाँटती है
प्रलय के विक्षुब्ध तम में
यह सृजन को अमिट रेखा
रूप यह, सौन्दर्य यह
मैंने नहीं अन्यत्र देखा
तपःपूता यह लता-गात्री
प्रणति दो
यह प्रतीकों की अधिष्ठात्री
प्रणति दो

ओ प्रकाश !
यह स्वर लो मेरा

शब्द-शब्द है प्रश्न और
हर सांस एक जिज्ञासा
व्योम तुम्हारा उत्तर, पृथ्वी
जिसकी छंदित भाषा
भूल गया मैं जनम-जनम की
संचिति परिधि-रहित है
इतना ही है याद, तुम्हारी
ज्वाला से परिचित हूँ
आज वही ज्वाला ले मेरी
संध्या में भर आओ
मेरी तारों-भरी रात को
दुलराओ, दुलराओ

असम्पृक्त

मैं अनुवादित हो न सकूँगा
सागर से, तूफ़ान से

बार-बार ले गया मरण
जीवन का दीप बुझा के
बार-बार 'लौ' को मैंने ही
स्पंदन दिए विभा के
बार-बार डँस गई मुझे
सर्पिणी एक दीवानी
बार-बार मैं बना नए
सूरज की नई कहानी
बार-बार तम रहा मिटाता
मेरे अलिखित पथ को
बार-बार मैंने संज्ञा दी
उठा धूल से अथ को
शब्द तिलक मेरे माथे का
कण्ठहार अक्षर है
मैं अनुवादित हो न सकूँगा
गति से, गीत-वितान से
सागर से - तूफ़ान से

सब का तन है एक ओर मैं
बाधक सब के तन का
सब का मन है एक ओर मैं
भावक सब के मन का
साँस उखड़ जाती तब भी मैं
यों ही बोला करता
देह भस्म हो जाती तब भी
यों ही होता करता
फूलों की शोभा - यात्रा में
जग सजिध बह चलता
शूलों के सूने मंदिर में
दीपक मेरा जलता

समकालीन अभिमन्यु सूर्य
वह श्वेतभानु, वे तारे
मैं अनुवादित हो न सकूँगा
प्रतिबिंबन, प्रतिमान से
सागर से, तूफान से

मेरे कर में पूर्णपात्र, मैं
पग-पग रस छलकाता
मेरे कर में रिक्त-पात्र, मैं
सब की प्यास बढ़ाता
अंबर से शंबर ले-लेकर
मैं झकोर पर आता
मरु-मरु में, पथ में, तरु-तरु में
मैं हिलकोर उठाता
तिमिर-विविर हो, ज्योति-शिविर हो
मैं तोरण बन जाता

सयानी सयान माँगते
मैं हर सांस लुटाता
विश्व-योजना के समस्त
अध्याय अकल्पित मुझ में
मैं अनुवादित हो न सकूँगा
विधि से याकि विधान से
सागर से, तूफान से

कहीं बिंदु हूँ सूना-सूना
कहीं शीर्ष - रेखा हूँ
स्वर हूँ कहीं, कहीं व्यंजन हूँ
या हलन्त लेखा हूँ
अंकुर कहीं, कहीं अक्षय-वट
तृण का कहीं खिलौना
कहीं विपुल विस्तीर्ण मेघ-पट
कहीं एक कण बौना
कहीं स्पर्श, अनुभूति कहीं हूँ
कहीं प्रणति वंदन की
चुंबन कहीं, कहीं आलिंगन
शीतलता चंदन की
यह अवृन्त व्यक्तित्व लिए
चुपचाप आयु चलती है
मैं अनुवादित हो न सकूँगा
आकृति से, आख्यान से
सागर से, तूफान से

ओस रात की, दिन की किरनें
मुझे सजाने आतीं

रक्त - शिराएँ, ज्वालाएँ
मेरी काया दुलरातीं
लहरें मेरा पथ सँवारतीं
पवन साथ देता है
चंद्र-यान नभ के समुद्र में
मन मेरा खेता है
अपदस्थ हूँ, असम्पृक्त हूँ
फिर भी नहीं अकेला
यह मेरी रिक्तता लिए चलती
समष्टि का मेला।
कोई मुझसे बड़ा छिपा रहता
मेरी धड़कन में
मैं अनुवादित हो न सकूँगा।
उपमा से, उपमान से!
सागर से, तूफान से!!

ग्रह-पथ की, छाया-पथ की
कल की चिंता है भारी
सोच रही धरती, कैसी
होगी कल की चिनगारी
पर मैं तो आश्वस्त कि मैं
कल का अनिवार्य सृजन हूँ
जो अलक्ष्य-पद पर अंकित
वह चिर-कालिक श्वस्तन हूँ
आवर्त्तन के तुमुल-याम में
मैं कल का दर्शन हूँ
प्रत्यावर्त्तन के विराम में
कल का नीराजन हूँ

जग की चिंताओं में मेरा
निश्चय बोल रहा है
मैं अनुवादित हो न सकूँगा
अनुभव से, अनुमान से
सागर से, तूफान से

मैं अपनी हर धड़कन दे
देता आकाश-वशा को
प्राणों को हर सिहरन दे
देता हूँ दिशा-दिशा को
मैं उत्सर्ग स्वयं को कर
देता धरती के मुख पर
मैं बिखेर देता हूँ अपनी
हँसी क्षितिज के मुख पर
वह अतीत है, वर्त्तमान यह
उधर भविष्य झुका है
मैं तीनों को रक्त दे रहा
क्रम यह नहीं रुका है
आज यहाँ, कल वहाँ और फिर
जाने कहाँ मिलूँगा
मैं अनुवादित हो न सकूँगा
जग के अनुसंधान से
सागर से, तूफान से

जीवन-रस पीता मैं

रातें बीतीं, बीते दिन, कितने याम, न बीता मैं

पल-पल ओसों से घुल-घुल कर
सुरभी पंखुड़ियाँ खुल-खुल कर
बीतीं घड़ियाँ भी ढुल-ढुल कर
पथ शेष जिधर, रथ चला उधर
कौतूहल यही अशेष किधर
अनिमेष रूप-घट से निकाल जीवन-रस पीता मैं
रातें बीतीं, बीते दिन, कितने याम, न बीता मैं

अंबर धरती से सिक्त हुआ,
शंबर देकर घन रिक्त हुआ,
संपूर्ण क्षितिज सम्पृक्त हुआ,
मेरी पुलकित प्लवमान लिप्सा
सुख लूट-लूट कर थकी तृषा
साक्षी भविष्य की उषा न तो भी किंचित् रीता मैं
रातें बीतीं, बीते दिन, कितने याम, न बीता मैं

प्रणिपतित सूर्य, श्री-हत-मयंक
आहत तम डगमग पग सशंक
पवमान प्रबल श्लथ व्योम-अंक

प्रिय-चरण-पद्म दृग चित्त गढ़ें
पद्मक-सी साँसें अथक कढ़ें
हर चरण-चाप को नाप-नाप हारा भी, जीता मैं
रातें बीतीं, बीते दिन, कितने याम, न बीता मैं

लो स्पृष्टि, स्नेह का मधुस्पर्श
लो सृष्टि, स्नेह का नवोत्कर्ष
लो दृष्टि, देह से परे दर्श
लो विश्व-काव्य नव-नव अनन्य
लो भव्य-भाग्य, लो भवश्रिमन्य
लो स्वर, पर पूछो यह न प्राण ! किसका मनचीता मैं
रातें बीतीं, बीते दिन, कितने याम, न बीता मैं

एक तुम हो, एक मैं हूँ

तुम चले अपनी प्रतिच्छाया छिपाने
सच कहो प्रिय ! कौन-सा आकाश हूँ मैं

मूक तारे या तुम्हारे
अनगिनत अक्षर सुरीले
नीलिमा के आवरण पर
आँकते हैं गीत गीले

तुम चले हर पंक्ति में धड़कन बिछाने
सच कहो प्रिय ! कौन-सा इतिहास हूँ मैं

छोर दो हैं, बीच में यह
श्वास का सुरधनु खिंचा है
दो पुतलियों की सहेली
आंसु अलबेली ऋचा है

तुम चले सुमनस-सुमन सौरभ लुटाने
सच कहो प्रिय ! कौन-सा मधुमास हूँ मैं

एक तुम हो, एक मैं हूँ
विश्व कोई कल्पना है

एक अथ है, एक इति है
सृष्टि सारी जल्पना है
तुम चले अपना 'अहं' अपने मिटाने
सच कहो प्रिय ! कौन-सा उच्छवास हूँ मैं

विसर्जित अस्तित्व

मरण-लग्न का तुम मुझे बंदी बनाओ
मुक्ति का क्षण सांस से मैं नाप लूंगा

आयु की छोटी-बड़ी अनगिनत रेखाएँ न बोलें
उभरतीं, फिर सिमटतीं, फिर भागती घूंघट न खोलें
मैं खड़ा चुप देखता हूँ, नाव आती, नाव जाती
रिक्तता अपनी लिये मेरी कहानी गा न पाती
तुम छिपाए ही रहो वरदान अपने
मैं बड़े सुख से तुम्हारे शाप लूंगा

मिलन जाने धार है, आधार है या कूल कोई
प्यार है या प्यार का शृंगार शाश्वत फूल कोई
सुप्ति है या जागरण या स्वप्न है अनिमेष कोई
मैं न जानूं मिलन क्या है श्लोक है या श्लेष कोई
तुम मिलन-मधुमास बनकर मुस्कराओ
मैं विरह की जलन लूंगा, ताप लूंगा

देह की हर चेतना का नाम मैंने ही चुना है
स्नेह की हर प्रेरणा का गीत प्यारा सौगुना है

तन जला है स्पर्श से शत बार सुधि से मन जला है
कट रही अस्तित्व की रेती, समय की यह कला है
देवता ! तुम तनिक भी विचलित न होना
मैं भविष्य-विधान अपने आप लूँगा

मैं अनर्पित कामना के दीप की जलती शिखा हूँ
मैं समर्पित साधना का छंद, ज्वाला से लिखा हूँ
कल्पना हूँ, पर तुम्हारे सत्य की अभ्यर्थना हूँ
स्वर विसर्जन का, विसर्जित हर किरण की वंदना हूँ
क्या हुआ यदि आवरित है गति तुम्हारी
पुतलियों में बाँध मैं पग-चाप लूँगा

सेतुबंध

इस किरण को बाँध दो तुम उस किरण से
सेतु पूरा हो तुम्हारी कल्पना का

मैं तुम्हारे उस गगन की बात कहता
अमृत जिसकी मधुरिमा है
चाँद तुम हो, पूर्णिमा है
वह बड़ा प्यारा गगन है

और अपने गगन की भी बात कह दूँ
चाँद लेकर एक वह भी प्यार करता
चूमता, मनुहारता, शृंगार करता
पर, थका-हारा गगन है

इस गगन को बाँध दो तुम उस गगन से
सेतु पूरा हो तुम्हारी कल्पना का

बिंदु को तुमने सजाया
सिंधु की गहराइयों से
लहर की अँगड़ाइयों से
प्यार भी कैसी जलन है

साँस का गीत

यह साँस मिली, इसपर मैं रीझा बार-बार

लगता है, कुछ नभ की लहरों पर उतराना
खग कोई अपने लोमश पर को फैलाना
जग जिस पर बैठा रात-दिवस चक्कर खाता;

लगता है, कोई पुष्प आयु के चुनता है
सौन्दर्य-सूत से ताना-बाना बुनता है
अपने ही स्वर को स्वयं मुग्ध हो सुनता है

लगता है, कोई सुरभि बाँटती
मधुमाधव का समाचार

प्राणों की यह संदीप्ति-शिखा रस से विभोर
अनलस, अतंद्र, अनयन, अनिमिष, अपलक अछोर
संपूर्ण काल को लिया बाँध, यह वही डोर

सौ-सौ जन्मों के शेष-भार को तोल रही
चेतन, अवचेतन, दोनों के सँग डोल रही
ग्रंथियाँ न जो खुल सकीं, उन्हें अब खोल रही

यह तंतु नहीं, तंत्रिका नहीं,
फिर भी बोले जैसे सितार

अनगिनत युगों से निर्झर अविरत झरते हैं
निर्जन-वन के मन का सूनापन भरते हैं
दिन-रात गंध-रस सुमनस-सुमन वितरते हैं

पर यह विनता—संज्ञा इसे दुकूल कहूँ
अनदेखे चरणों की वियोगिनी धूल कहूँ
या इस प्रपंच का इसे विकस्वर फूल कहूँ

या कहूँ कि प्रिय-पथ पर अशेष
आरती खड़ी अंचल पसार

संतुलन स्वयं ही असंतुलित, यह अनासक्त,
अपने में एक, न कहीं विभाजित या विभक्त,
अपने में अपनी हार-जीत अव्यक्त, व्यक्त,

हर तिमिर-तल्प इसके चुंबन से तरलायित
अविकल्प इसे छूकर खिलने को लालायित
हर कण अकल्प इससे संकल्पित ज्वालायित

तन-मन की तीर-तरंगों पर
तिरने - फिरनेवाली बयार

हर धड़कन से नभ का प्याला छलकाती-सी
हर अँकुर को दुलराकर दिये जलाती-सी
हर लौ से लौ को जीवन-अमृत पिलाती-सी

किसपर न लुटाये मैंने इसके दुर्लभ क्षण
किसपर न्योछावर किये न इसके मोहक कण
किसको न सजाया लेकर इसकी ज्योति-किरण

यह तुनुक-तुनुक, पर, देखो तो
इस ठौर लहर, उस ठौर ज्वार

साक्षी अतीत, मैं उपेक्षित उत्सृष्ट नहीं
साक्षी आगत, मैं उच्छ्वासित उत्सृष्ट नहीं
साक्षी भविष्य, मैं कोई अलिखित पृष्ठ नहीं

हर देह मृषा, मैं स्वयं प्रवर्तित रूपायित
हर गेह मृषा, मैं स्वयं प्रज्वलित धूपायित
हर स्नेह मृषा, मैं स्वयं प्रमोदित आप्यायित

हर सिहरन इसका एक छंद
हर छंद विश्व-भर की पुकार

प्रज्ञा

उतरो अयि आकाश-कुन्तले !
मेरे आलिंगन में

आओ, आज तुम्हारे उलझे केशों को सुलझा दूँ
चुन-चुनकर बिखरे तारों को वेणी में बिठला दूँ
वलय क्षितिज का, सागर की किंकिणी लिये हूँ कब से
आओ, आओ, चंद्रलोक की चूड़ामणि पहना दूँ
पृथ्वी का सारा रस बैठा
साँसों को सिरहन में

आज मूर्ति गढ़ने, प्राणित करने की वेला आई
भाँति-भाँति के छंद बन रही धरती की अँगड़ाई
सूरज तो मेरे मन के ही भीतर छिपा हुआ है
मुझे चाहिए आज तुम्हारे होठों की अरुणाई
जाग उठा है जग मेरे
नयनों के उन्मीलन में

रस-सिद्ध

तन में नन्हा-सा मन ले
रस में सराबोर
मैं उठा रहा हूँ काल-
पयोनिधि में हिलोर

भूले-बिसरे हैं चित्र बहुत, इतिहास बहुत
पलकों के भीतर सपनों के आकाश बहुत
साँसों में प्रतिपल घूम रहे वातास बहुत
हर धड़कन में अनजान प्रीति की प्यास बहुत

अस्तित्व जहाँ भी, जितने भी
सब को बटोर
मैं उठा रहा हूँ काल
पयोनिधि में हिलोर

घाटियाँ पार करता है जीवन चलता है
अनदेखे अंचल की छाया में पलता है
वह एक विसर्जित दीप, रात-दिन जलता है
आवरण डालता तिमिर, स्वयं को छलता है

आलोक थिरकता
मेरे कर में रश्मि-डोर
मैं उठा रहा हूँ काल
पयोनिधि में हिलोर

सबसे पहले आह्वान, तेज फिर कढ़ता है
सबसे पहले संधान, बाण फिर चढ़ता है
सबसे पहले अभियान, व्रती पथ गढ़ता है
सबसे पहले बलिदान, भविष्यत पढ़ता है

सबसे पहले संज्ञान
कि संज्ञा हो विभोर
मैं उठा रहा हूँ काल-
पयोनिधि में हिलोर

किसका स्वर जो पल्लव-पल्लव में रहा डोल
किसकी वाणी जो कली-कली को रही खोल
किसकी भाषा जो शब्द-शब्द को रही तोल
किसकी कविता जो अथ से इति तक रही बोल

सब ओर प्रश्न
उत्तर मेरा भी सभी ओर
मैं उठा रहा हूँ काल-
पयोनिधि में हिलोर

स्वयंनिर्णीत

जन्म लेने को पुनः इन धड़कनों में
आ रहा है रश्मियों का गीत

किस अनामा रात की वह थी तरंग अकूल
किस बकुल के फूल की वह थी अनाविल धूल
किस अधूरे स्वप्न की वह याद थी रंगीन
स्पर्श किसका था कि अब भी डोलते हैं गीत

द्वार मंदिर का खुला, सब आ रहे हैं
हार मेरी, इसी उन्हीं की जीत
जन्म लेने को पुनः इन धड़कनों में
आ रहा है रश्मियों का गीत

नियति की संकीर्णता चुपचाप करती कार्य
सृष्टि की हर साँस मुझको मानती अनिवार्य
ओ मरण ! मुझसे छिपा है कब तुम्हारा भेद
प्राण की सौगंध, मैं कोई नहीं निर्वेद

भूल पायी है न पृथ्वी प्रलय-जल को
किंतु जीवन कब हुआ है भीत
जन्म लेने को पुनः इन धड़कनों में
आ रहा है रश्मियों का गीत

वाष्प-घन-सा उड़ चुका हूं आँधियों के साथ
छू चुका हूँ मैं सितारों को बढ़ाकर हाथ
अक्षरों की हर लड़ी, हर पंक्ति है अच्छिन्न
चंद्र-सूर्य समानधर्मा कौन किससे भिन्न

ओ अनागत ! जय-तिलक आओ लगा दूं
काल साक्षी मैं स्वयंनिर्णीत
जन्म लेने को पुनः इन धड़कनों में
आ रहा है रश्मियों का गीत

संचार

एक पत्र भेजा है मैंने प्यार से

सुनता हूँ आवाज, चला वह झूमता
कभी लहर को, कभी हवा को चूमता
कभी बादलों में छिपता, पथ हेरता
कभी मचलती हुई सुरभि को टेरता
टकराता है कभी शून्य की ज्वार से
एक पत्र भेजा है मैंने प्यार से

गीतों को स्वर मिलता है पद-चाप से
गति प्राणित होती दूरी की माप से
प्रेरक बनता चरण नृत्य के ताल का
चक्षुस्पंद समय के अनिमिष ज्वाल का
उद्वेलित, मंथित अव्यक्त पुकार से
एक पत्र भेजा है मैंने प्यार से

देश-देश की सोंधी मिट्टी बोलती
शिखर-शिखर की स्नेह-शिखा रस घोलती
पृथ्वी कहती नभ से—मैं तो पास हूँ
नभ कहता—मैं अनबोला विश्वास हूँ

तारे लगते अनगिन बंदनवार-से
एक पत्र भेजा है मैंने प्यार से

पहचानी वह अंतरिक्ष की राह है
कण-कण में मेरा ही प्राण प्रवाह है
ठौर-ठौर अनलेख अनाविल कूल हैं
जहाँ खिले मेरी श्रद्धा के फूल हैं

संज्ञायित सारा भविष्य झंकार से
एक पत्र भेजा है मैंने प्यार से

एक छोर से बाँध दूसरे छोर को
रश्मि-राग में बदल चंद्रिका-डोर को
तृण-अधरों पर आँक अकंप हिलोर को
कैसे तुम्हें जगाता है वह भोर को—

यह सब देखूँगा मैं अपने द्वार से
एक पत्र भेजा है मैंने प्यार से

संबोधन के लिए नहीं कुछ बोलना
मैं मिल जाऊँ, फिर-फिर पाती खोलना
अक्षर जो सामने पड़े वह नाम है
जहाँ रुको तुम वहीं अशेष विराम है

मेरी सुधियाँ भर देना त्योहार से
एक पत्र भेजा है मैंने प्यार से

गोपन गीत

अनगिन तारे आ गये
अचानक गगन खुला
पर मेरे मन !
गोपन न खुला
गोपन न खुला

कविता ने खोला कंठ
स्वरों ने पथ खोला
मैंने शंखध्वनि की
शब्दों ने रथ खोला

मैं स्वयं खुला
यह भुवन खुला
वह भुवन खुला
पर मेरे मन !
गोपन न खुला
गोपन न खुला

मैंने निर्झर को रोक - रोक कर
गीत दिये
आगत के अर्घ्य, अनागत
और अतीत दिये

मेरे सबोधन से
अकूल का क्वणन खुला
पर मेरे मन !
गोपन न खुला
गोपन न खुला

सातों समुद्र को बाँध
तरंगित अलकों में
जो स्वयं बँधा था
शेफाली की पलकों में

मेरे दुलराने से वह
बंदी पवन खुला
पर मेरे मन !
गोपन न खुला
गोपन न खुला

मेरी साँसों पर गंध-चरण
अनजान चला
तत्त्वों का शाश्वत तत्त्व
स्वयं छविमान चला

मरु-मरु में तरु-तरु का
पावन पल्लवन खुला
पर मेरे मन !
गोपन न खुला
गोपन न खुला

मानस स छलकी कामायना
विद्युत - तले
मेरी अन्तंबरा के निरवधि
दृग - दीप जले

स्वर्णिम प्रकाश पी-पीकर
लोकायतन खुला
पर मेरे मन
गोपन न खुला
गोपन न खुला

नीराजन

देवता नहीं, दीपक भी सारे बुझे हुए
किसके वंदन के छंद सुनाऊँ मैं, गाऊँ
ओ रजनी के आँसू ! उतरो इन पलकों पर
देवालय में मै आज तुम्हें ही बिठलाऊँ

फूलों का सौरभ लुटा हुआ, कलियाँ रीतीं
उन्मत्त हवाएँ यों ही दौड़ी फिरती हैं
उड़ गया रंग जिनका, पंजर-भर बाकी है
ऐसी नौकाएँ अब भी जल पर तिरती हैं
संसक्ति और वंदित्व, अरे बंधन कैसा
छूटा न मोह अब तक इस रेतीले तट का
पल में बेहोश बना देता तन को, मन को
हिलकोर एक कौशेय वासना के पट का

सूखी मालाएँ, वेलपत्र भी सूखे हैं
प्रतिमा न कहीं, किसके चरणों में झुक जाऊँ
ओ तारों के रजकण ! उतरो इन पलकों पर
देवालय में मैं आज तुम्हें ही बिठलाऊँ

साक्षी अनंत उच्छ्वास घिरा अंबर जिससे
साक्षी दिगंत—वह वातावरण पुकार रहा
जिसकी अपारता का अंचल छू लेने को
उद्वेलित सागर दोनों हाथ पसार रहा
ओ मिट्टी के पुतले! तुमने जाना न मुझे
मैं वर्ष-मास हूँ, पल-छिन हूँ, संवत्सर हूँ
सच कहता हूँ, वह वातावरण पुकार रहा
सुन लो, क्या हुआ कि मैं कोई टूटा स्वर हूँ

अपनी बेकलियों को वाणी में दुलराता
वाणी को किसकी मुस्काहट से दुलराऊँ
ओ नभ के मुक्ताहल! उतरो इन पलकों पर
देवालय में मैं आज तुम्हें ही बिठलाऊँ

नीराजन की वेला यह बीती जाती है
ओ महाशून्य की शेष रात! देवता बनो
शिंजिनी बजे, नाचे भविष्य की दीपशिखा
ओ व्यथा-काव्य के उपोद्घात! देवता बनो
पल्लव-पल्लव पर, डाल-डाल पर नृत्य-शील
ओ शृंगी-रव! ओ वेणु-नाद! देवता बनो
मैं हेर रहा हूँ अंधकार-पथ एकाकी
ओ पग-चिह्नों की सजल याद! देवता बनो

अनगिनत कल्प, काल-क्रम अंजलि में मेरी
यह अर्घ्य-दान किसको दूँ, किसको अपनाऊँ
ओ होम-धूम के घन! उतरो इन पलकों पर
देवालय में मैं आज तुम्हें ही बिठलाऊँ

आलिंगित मैं

आए रात तुम्हारी तो मैं प्रात न मांगूंगा

अनिमिष क्षितिज गगन अनयन हो
दीप विसर्जित, शून्य शयन हो
परस तुम्हारा परिचय देगा
चाहे तिमिर-वितान सघन हो

आलिंगित मैं तारों की बारात न मांगूंगा

चंचल अंचल धार समय की
रुके गोद में अमृत प्रणय की
रुके कूल के वक्षस्थल में
विप्रलब्ध यह लहर हृदय की

तो मैं पुलक उठाने को मधुवात न मांगूंगा

क्षितिज

विहग ! छाँह पंखों की डालो

बहुत यंत्रणाएँ सह सकती प्यास
बहुत रक्त दे सकता है विश्वास
अभी न बुझ पायी चिनगारी समिधाएँ सुलगालो

एक क्षितिज मन झूमे जहाँ विभोर
एक क्षितिज मन चूमे जिसका छोर
एक क्षितिज मन जहाँ रमा है क्षिति से क्षितिज मिलालो

ग्रह टकराते चूर हुए जाते हैं
भाव भाव से दूर हुए जाते हैं
सेतु बाँधनेवाले विरमित हों जिस ठौर उठालो

विहग ! छाँह पंखों की डालो

संज्ञा एक सुजाता

प्रतिमाएँ गढ़ता कोई
कोई मूर्तियाँ बनाता
आकृतियों के मेले में
अपने को मैं बिखराता

स्वीकृत हुआ कि अस्वीकृत मैं
कभी न पूछा मन से
तृप्ति अतृप्ति किसी ने भी
आकर्षित किया न तन से
आलिंगित मैं हुआ किंतु कब
बाँधा आलिंगन ने
अवगुंठित को भी देखा
रोका अब अवगुंठन ने

एक साँस दूसरी साँस से
जोड़ रही है नाता
आकृतियों के मेले में
अपने को मैं बिखराता

एक ओर कामना खड़ी है
या कोई अलका है
एक ओर वेदना खड़ी है
या आँसू छलका है
ऐसा लगता एक ओर
पूर्णिमा निमंत्रण देती
एक ओर रिक्तता संजोती
नक्षत्रों की खेती

नभ को देखे, पृथ्वी को भी
संज्ञा एक सुजाता
आकृतियों के मेले में
अपने को मैं बिखराता

विष का अंतराल काला है
काली है काया भी
आग उगलते फलवाले तरु
कटे वृक्ष, छाया भी
अंतरिक्ष को पी लेते हैं
अहि पर्वत के काले
काले अंधकार के दानव
उड़ते पंखोंवाले

गत को इंगित करे अनागत
आगत समझ न पाता
आकृतियों के मेले में
अपने को मैं बिखराता

धरती है अनुभूति गगन भी
अनदेखी ज्वाला भी
मरु भी है अनुभूति, पवन भी
श्याम - जलद - माला भी
कलाकार की कला नाचती
पग - पग जीवन - मग में
बनती है अनुभूति मृत्यु भी
साथ जन्म के जग में

कभी - कभी इतिहास बुझे
दीपों की कथा सुनाता
आकृतियों के मेले में
अपने को मैं बिखराता

मेरा साथी एक प्यार है
बिना किसी परिचय का
एक गीत है बिना छंद का
बिना राग का, लय का
मेरा परिचित एक हृदय है
लुक - छिपकर रहता है
तृण का तिलक लगा माथे पर
निर्झर - सा बहता है

मेरी कविता अरुण क्षितिज की
रेखा सद्यः स्नाता
आकृतियों के मेले में
अपने को मैं बिखराता

जीवन की कविता

ऐसी कहानियाँ जिन्हें लिखा करता पतझड़
औपन्यासिक मधुमास समझ क्या पाएगा
बरसाती नदियाँ कविता जो लिख देती हैं
ग्रीष्म का जलता हृदय उसे क्या गाएगा

आँधियाँ उड़ाकर ले जातीं जिस पत्ते को
क्या उसके मन में कोई भी अरमान न था
जो उठ न सकी ऊपर, नीचे ही दबी रही
उस तुनुक लहर का क्या कोई बलिदान न था

जिस ठौर, जहाँ इतिहास मौन रह जाता है
प्रहरी तारे उस ठौर बोल ही देते हैं
जिन पृष्ठों को पढ़ने का अधिकार नहीं
वे उन पृष्ठों का मर्म खोल ही देते हैं

जय उन गीतों की, जिनका हर अक्षर लेकर
फूलों के पथ पर दीप जलाये जाते हैं
जय उन गीतों की, जिनका हर अक्षर लेकर
वरदानों के देवता बुलाये जाते हैं

जय उनकी भी, जो बिना किसी के गाये ही
दिन-रात गूँजते आसमान की साँसों में
जय उनकी भी, जो दुनिया के सो जाने पर
चुपचाप जागते निर्झर के उच्छ्वासों में

आँसू के परदे से जिसको देखा करते
वह रात सजी, जैसे कोई बारात सजी
हँसता न हृदय, रोता न हृदय, चुप भी न रहे
जाने किन मेघों से इसकी बरसात सजी

यह हृदय एक छोटा-सा खग उड़ता जाता
नभ के आगे इसका कोई अपना होगा
उड़ता जाता निस्सीम शून्य में एकाकी
नीले तरु पर बैठा कोई सपना होगा

यह हृदय एक छोटा-सा खग अपने-जैसा
शबनम का वह संदेश सम्हाले रहता है
रजनी की गीली पलकों से ढुल-ढुलकर जो
ऊषा के पुलकाकुल प्याले में बहता है

यह हृदय किसी गुमनाम व्यथा का साथी है
गुमनाम व्यथा वह करुणा के घर बसती है
कीमत का उठता प्रश्न नहीं, सच कहता हूँ
हर साँस और सिसकी करुणा की सस्ती है

किसने देखा सौन्दर्य सरल उन कलियों का
जिनकी संज्ञा आहों में रूप ग्रहण करता
किसने उस स्नेही अंकुर को पहचाना है
जिस पर प्राणों की पहली ज्योति चरण धरती

पथ पर, पग-पग पर काँटे मिलते, चुभते हैं
हर चुभन अनागत की लौ को उकसाती है
वह दीन पुजारिन पीड़ा जिसको कहते हैं
मन की अँधियारी में प्रकाश फैलाती है

सागर मंथन का अमृत मिले चाहे जिसको
विष को अपना लेना कोई अपराध नहीं
मैंने जीवन को एक यज्ञ ही माना है
आहुति अपनी जो दे न सके वह साध नहीं

पा लेना जीवन को कविता का अर्थ नहीं
पूछो पावक से क्यों दिन-रात सुलगना है
पा लेता है आकाश चाँद को, सूरज को
फिर भी उसका अन्तरंग सूना लगता है

पृथ्वी की धड़कन में भविष्य बोला करता
स्वर सुनता कोई दीवाना पदचारी ही
सूली भी दे आराध्य बड़ा सुख मिलता है
सौगात मिलन की होती ऐसी प्यारी ही

सौगंध देवता के अनदेखे आँसू की
यह जीवन बिछुड़न की कविता का अन्वय है
अक्षयवट भी है और बाँसुरी भी बजती
बिछुड़न की कविता का कितना मोहक लय है

जागर्या

उतरेगी समलंकृता ज्योति
गीतों के पहरेदार !
जागते रहना तुम

अनजान तीर के रहनेवाले ऋचाकार
तपसी-तारों का हृदय मोह
नाचेगी नभ के हिलकोरों पर
पायल की झंकार
जागते रहना तुम
उतरेगी कुसुमार्चिता ज्योति
गीतों के पहरेदार !
जागते रहना तुम

आकाश भूमि को छूता-सा
सागर अनन्त ऊर्मियाँ फेंक
अनगिनत वीचियों को उछाल
मद-मत्त नाग-नागिनियों को
मणि-सोपानक फहराता-सा
गर्वित मस्तक पर अयुत

नागकेशर के दीप जलाना-सा
छलकेगा चारों ओर एक
अलिखित विराट शृंगार
जागते रहना तुम
उतरेगी चिर-चर्चिता ज्योति
तारों के पहरेदार
जागते रहना तुम

निस्तब्ध रात्रि की मधुर
आर्द्रता से अभिमंत्रित न्यायपीठ पर
समासीन
प्रत्यंचित प्रतिमा बाँटेगी
प्राणों में भर-भर प्यार
जागते रहना तुम
उतरेगी अपराजिता ज्योति
गीतों के पहरेदार !
जागते रहना तुम

बंदी का स्वर

नीरव नभ की ऊँची-ऊँची टेकड़ियों पर
जगमग हीरक-कण जो छितराये रहते हैं
उस अनबेधी नीली अपारता को छूकर
जो स्रोत अनाविल इंद्रनील के बहते हैं

कंटकित नागवीथी के कंपित अंचल में
जो अनब्याही कलियाँ लालसा सँजोती हैं
रूपाभ तोय-वेला से लिपटी वल्लरियाँ
चितवन से जो चितवन की कोर भिगोती हैं

मैं जनम-जनम से उनका अमरण बंदी हूँ
सच है, वे बहुत विकल हैं मुझसे मिलने को
सच है, ऐसे अस्तित्व अनेक तड़पते हैं
पर अभी आखिरी कविता बाकी लिखने को

चंद्रमा, सूर्य, दो-दो अनमोल धरोहर हैं
ऐसे भी पहरेदार सरकती छाया के
उँगलियाँ लिख रहीं जो अदृश्य के पृष्ठों को
वे भेद जानतीं चलती-फिरती काया के

तट पर की रेखाएँ छूने से बज उठती
मझधार, अरे, उसका अदीन हर अक्षर है
नीहार-सिक्त मरकत-दर्पण में बिजड़ित-सा
हर अक्षर का अंतराकाश मेरा घर है

रिक्ते ! मुझे चाहिए तुम्हारी छाँह नहीं
मैं मुक्त-गगन की साँस-साँस में खुलता हूँ
तुम अंधकार के आलिंगन में सुख पाओ
मैं जीवन हूँ, प्रतिपल प्रकाश से धुलता हूँ

ओ उन्मादिनि ! चाहिए तुम्हारा छंद नहीं
तुम मरण-काव्य की पृष्ठभूमि में पलती हो
अनगढ़ भविष्य को गढ़कर सुघड़ बनाता मैं
तुम आयु-पंथ पर साथ तिमिर के चलती हो

सौन्दर्य कि जो जलयान बिना तिरता रहता
अन्तर्दर्शी नयनों के दोनों छोरों पर
प्राणों का बंधन खोल रहा नंदन-वन में
अन्त:सलिला कविता के मृदु हिलकोरों पर

कविता की छोटी-सी बाती, यह जला करे
इसकी ज्वाला का जल-कण जीवन को धोता
आकाश इसी को लेकर अभिमंत्रित करता
वह नदी-तीर, तारों का जन्म जहाँ होता

ओ आदि-शिल्पि ! तुमने जिस छांदस रचना में
अंकित अपने जाग्रत मन का संसार किया
ओ पुरुष ऋतंभर ! जिन शब्दों की शृंगों से
अनुनादित तुमने सृष्टि-सृष्टि का तार किया।

उनके अवगुंठित वर्ण-वर्ण की धड़कन को
ऊषा की केशर-किरणों में दुहराऊँ मैं
नीराजन की आलोक-कली को विकसाकर
रजनी की कोमल पलकों में दुलराऊँ मैं

ज्वारित कर भू को, सातों सिन्धु, तलातल को
जिनके तनुरुह पर बैठ गीत-खग सुधा पिये
मैं जनम-जनम से उन सपनों का बंदी हूँ
जिनके पंखों ने गगन अनगिनत पार किये

ज्वाला का शृंगार

मैं भी कुछ अपनी बात कहूँ, जो कहता है
जाने फिर कब सागर को ऐसी ज्वार मिले

वे तारे हैं या छवि के सौ-सौ राजदूत
झलमल प्रकाश या कोई मूक इशारा है
जब-जब आती है साँझ, रात जब-जब आती
ऐसा लगता कि किसीने मुझे पुकारा है

आँखें खोजा करतीं कि तीर के बंदी को
इस मरण-तिमिर के बीच ज्योति का हार मिले

सोयी सपनों की सेज अर्पिता शेफाली
जब आँख खुली, वेला आ गयी विसर्जन की
यह साँस अनछुई उसी समय से भटक रही
जैसे कंपित 'लौ' अस्वीकृत आराधन की

तुम अनचीते पर चले स्नेह बरसाने को
वर दो कि तुम्हारा मधुर परस हर बार मिले

सुख के झोंके तो आते-जाते रहते हैं
जलयान एक छूता है कई किनारों को

थिर तब हो जब आनन्द तुम्हारा ले समेट
हर तट से उठती हुई विकल झंकारों को

अपनी चितवन में तुमने कैसे भाव भरे
मैं सोचूँ, उस तट का कोई त्योहार मिले

कुछ छिपा लिया, कुछ लिखा नहीं, कैसी रचना
यह पल तुम्हारा साथ लिये रहता हूँ मैं
उत्तर भी अबतक कहाँ हो सका है पूरा
अनकहा रहे जितना जो कुछ कहता हूँ मैं

सुलझी भाषा के सजल मेघ! अंतर खोलो
क्षण-भर उड़ती बूँदों पर का अभिसार मिले

उस ओर जल रही अँधियारे में दीप - शिखा
बनकर आकाश हृदय मेरा पहरा देता
ओ रूपपुंज! तुमने क्यों यह कल्पना न की
इन पलकों से कोई उसको दुलरा लेता

जब शेष अश्रु अङ्गारों को लिपि-बद्ध करे
निःशेष तुम्हारी ज्वाला का शृंगार मिले

गीत

मुझे गीत में ही मिल जाओ
आँसू के जितने अक्षर हैं
सबको अपना छंद बनाओ

स्वर के मेघ ! गगन में मन के
खोलो पंख मिलन-सावन के
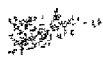
घेर-घेरकर, घूम-घूमकर
घहर-घहरकर रस बरसाओ

ग्रह-पथ में दौड़ें सब तारे
पर्वत उड़ें, समुद्र पुकारें

झंझाएँ झल्लकी बजाएँ
तुम ऐसा हिलकोर उठाओ

जब तक जले साँस की बाती
'लौ' यह रहे तुम्हारी थाती

दीप बुझे तो अंधकार में
तुम अपनी बाँहें फैलाओ

एक किरण जिस ओर मरण है
एक किरण जिस ओर शरण है

एक किरण जिस ओर चरण है
उस पथ का आवरण हटाओ
मुझे गीत में ही मिल जाओ

साँस की छाया

मैं प्रतीकित दीप अपने देवता का
समय का हिलकोर मेरी 'लौ' सम्हाले

स्वयं उद्घोषित कि मानो रश्मि-शर हो
मंडलित आकाश से आलोक-धर हो
प्रस्फुरित संदीप्ति का विद्युत्-शिखर हो

यह समर्पण की शिखा, सौन्दर्य की निधि में तुम्हारी
लग रही जैसे किसी ने साँस की छाया उतारी

ओ प्रभंजन !
तिमिर से कह दो कि अपने दृग जुड़ा ले

मैं प्रतीकित दीप अपने देवता का
समय का हिलकोर मेरी 'लौ' सम्हाले

आँधियों के खेल में छू लूँ गगन को
शिखि-शिखाओं में लपेटूँ प्रलय-घन को
और उल्का-चक्र में बाँधूँ पवन को

शून्य जब नभ का पिघलता, स्नेह मेरा छंद बनकर
सौर-मंडल में उमड़ता अमृत का आनन्द बनकर
अश्रु सागरमेखला के मीत ! मेरा गीत पाले

मैं प्रतीकित दीप अपने देवता का
समय का हिलकोर मेरी 'लौ' सम्हाले

प्रेरणाओं से निकलकर प्रेरणाएँ
वेदनाओं से निकलकर वेदनाएँ
दे रही हैं सृजन को नूतन विधाएँ

ओ नखत ! ओ सूर्य समकालीन ! मेरी ओर देखो
प्राण के लघु बिन्दु में केन्द्रित अकूल अछोर देखो
एक साँस अनन्त साँसों को तरंगों-सा उछाले

मैं प्रतीकित दीप अपने देवता का
समय का हिलकोर मेरी 'लौ' सम्हाले

देवता का दान

घोषणा कर दो कि मैं कवि का अकेला गान

प्राण ऊपर उठ रहे हैं, एक पुष्पोच्छ्वास उठता
एक बादल हर नदी के कूल को छूकर जगाता
एक अंकुर अपरिमेय प्रियत्व की परिकल्पना में
प्रस्फुरित हो घाटियों से अचल को चुपके मिलाता

एक शाश्वत श्रोत, करते हैं सभी रस-पान
घोषणा कर दो कि मैं कवि का अपरिचित गान

जो मुझे छूता उसे सुनसान का पंजर न मिलता
देह मिलती, प्राण मिलते, हृदय मिलता, साँस मिलती
जो मुझे पढ़ता उसे इतिहास का खँडहर न मिलता
वह्नि-कण मिलते, छलकती दीप्ति मिलती, प्यास मिलती

रश्मि - वलयित एक नव संधान, नव अभियान
घोषणा कर दो कि मैं कवि का अपरिचित गान

खोल वातायन अलौकिक रूप का अपने नयन से
वंदना के दीप की अनिमिष शिखा प्रतिनिमिष डोले

सृष्टि की लिपि में अचेतन और चेतन को समेट
वर्तमान, भविष्य—दोनों का सनातन सत्य बोले

काल-पट पर इन्द्रधनुषित स्नेह का प्रतिमान
घोषणा कर दो कि मैं कवि का अपरिचित गान

जन्म के अनगिनत रूपक मरण के तट पर सजाकर
आयु की सिकतामयी नक्षत्र-खचित पदावली से
उँगलियों ने जब किया तैयार अंतिम सर्ग पथ का
सिसकियों ने भूमिका लिख दी समय की बेकली से

ओस का कण वेदना को देवता का दान
घोषणा कर दो कि मैं कवि का अपरिचित गान

भागती घड़ियाँ कि जीवन, कल्पना या खेल भावी
एक छंदोबद्ध धड़कन बीच की कोमल कड़ी है
पारदर्शक आवरण से झाँकती-सी क्रांति-वेला
एक दीप-परंपरा तम के विपर्यय में खड़ी है

पुतलियों की लौ पिघलकर बन रही मुस्कान
घोषणा कर दो कि मैं कवि का अपरिचित गान

विसर्जन

तृषित मरु का एक कण हूँ
एक क्षण वह दो कि खो जाऊँ तुम्हारे
अलस पलकों के निलय में
अतुल अतुमुल अभिप्रणय में

ओ अमित परिमाण के आलोक

यह तुम्हारी स्वरित सांसों का प्रवाह अखंड
काल के इतने अनुक्रम और इतने खंड
नाचता मन, नाचता तन, ओ चिरंतन
रूप के धन
एक क्षण वह दो कि खो जाऊँ तुम्हारी
कल्पनाओं की निशा में
रस - समीरित शिशयिषा में

ओ अकृत्त प्रमाण के आलोक

गंध-मंद-समीर नर्तित वन-विजन तरु-पात
वंदना की अश्रु-लिपि में सज चुकी है रात

सुप्रतीकित

प्राण !
मेरे प्राण !
मैं प्राचीनता की गोद में सोया हुआ हूँ

हृदय की हर मुखर धड़कन मूक तारा बन गयी है
साँस से पिघली हुई हर बूँद धारा बन गयी है
पृष्ठ पथ के यों खड़े इतिहास मानो ढूँढ़ता कुछ
अवधि से जुड़कर अवधि दुर्गम किनारा बन गयी है
पुतलियों की नाव पर रंगीन सपनों को बिठाकर

हर कली, हर फूल
कहता है कि आँसू एक मैं रोया हुआ हूँ

वह तृषित मरुभूमि अपनी आग को न छिपा सकी है
वह लहर मंथर वसंत-पराग को न छिपा सकी है
मौन का ही नाम है इतिहास तो उस ओर देखो
वह समय की रेत सैकत-राग को न छिपा सकी है
मरण में लगता कि मैं हूँ प्राप्त अपनाया हुआ-सा

जन्म में अनुभव किया
मैं विलग हूँ, खोया हुआ हूँ

बीन की सौगंध, मेरे छंद थे अर्पित गगन को
छंद की सौगंध, मेरे गीत थे अर्पित यजन को
गीत की सौगंध, मेरे शब्द थे अर्पित धरा को
शब्द की सौगंध, मेरे स्वप्न थे अर्पित सृजन को
स्वप्न की सौगंध, मेरे दीप थे अर्पित क्षितिज को

दीप साक्षी, मैं उन्हीं के
सुप्रतीकित स्नेह से धोया हुआ हूँ

एक ऐसा स्वर कि कोलाहल न जिसको सह सका है
एक ऐसा तप जिसे अभिव्यक्त कर न प्रवह सका है
एक संज्ञा विश्व ने जाना नहीं अस्तित्व जिसका
एक ऐसा वृत्त जिसको मौन ही बस कह सका है
एक अर्न्तदाह जिसको छू सका कोई न भय से

ओ अमृत
मैं तो तुम्हारी देहरी के पास ही बोया हुआ हूँ

विश्वंभरा

नृत्य-रत अविरत थिरकते चरण किसके
और किसकी धड़कनों में कौंधता इतिहास
स्वप्न किसका, अब्दियाँ मेरे दृगों में
आज चित्रित ज्यों समुद्रोल्लास

गीत में अपने न मैं हूँ दूर तुमसे
धारयित्री देह की मेरी, पुनीते !
लय तुम्हारी है, तुम्हारी व्यंजना है
जय तुम्हारी बोलता हूँ मैं सुनीते !

साँस मेरी कर रही वलयित प्रतिक्षण
दीप्तियों के देश को आराधना-सी
लौ निरंतर उठ रही ऊपर अकंपित
तपश्चरणों में पड़ी चिर साधना-सी

प्रज्वलित आह्वान की चिनगारियों में
छंद मेरे उड़ रहे नक्षत्र - पथ पर
आयु के शत फूल मैं तुमपर लुटा दूँ
रश्मियाँ उतरें तुम्हारी, प्राण - रथ पर

परिशिष्ट

१. भविता (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ७ दिसंबर १९५८)
२. रश्मि-निर्झर (मंगला, जनवरी १९५३)
३. आदीपित (नारी, जून १९५५)
४. प्रेरणा (भारतवाणी, जून १९५३)
५. अमर बंधन (कल्पना, सितंबर १९५३)
६. वाक (अवंतिका, मई १९५५)
७. पार्थिवता (नया समाज, अक्टूबर १९५७)
८. समाधान (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ७ नवंबर १९५४)
९. साग्निक (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३१ जुलाई १९५५)
१०. उन्मुख (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २२ जुलाई १९५६)
११. मनुष्य (अणुव्रत, जुलाई १९५७)
१२. प्रत्यय (राष्ट्रभारती, मार्च १९५८)
१३. आत्मरति (नया समाज, जनवरी १९५८)
१४. विराट क्षण (राष्ट्रभारती, सितंबर १९५७)
१५. चंचल (धरातल, फरवरी १९५८)
१६. रसवंती (नया समाज, मई १९५८)
१७. किशलय गान (लहर, नवंबर १९५६)
१८. विश्वमय (राष्ट्रभारती, दिसंबर १९५७)
१९. विराट कण (भारती, अगस्त १९५८)
२०. चिंता (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १५ दिसंबर १९५७)
२१. रूपक (भारती, दिसंबर १९५७)
२२. तरलायित (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १२ जनवरी १९५८)
२३. चिरकांक्षित (११ जनवरी १९५८)
२४. तन्मय (भारती, फरवरी १९५६)
२५. आवर्त-हिलोर (लहर, नवंबर १९५८)
२६. लगन (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १ मार्च १९५९)
२७. देवता की याचना (राष्ट्रभारती, मई १९५८)

२८. देवता से प्रार्थना (राष्ट्रभाषा, जून १९५८)
२९. नीराजन (योगी, दीपावली-अंक १९५८)
३०. जाने कैसे यह प्यार... (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १८ जनवरी १९५९)
३१. परिणति (मध्यप्रदेश संदेश, २८ मई १९६०)
३२. शब्द (ज्योत्स्ना, सितंबर १९५९)
३३. जीवंत (राष्ट्रभारती, दिसंबर १९५८)
३४. विसर्जन (जागरण, नवंबर १९५९)
३५. मुखर शून्य (२९ अक्टूबर १९५८)
३६. आश्वस्त (सन्मार्ग, दीपावली-अंक १९५९)
३७. अनिवार्य मैं (भारती, वार्षिक विशेषांक, १९६०)
३८. आरोपित (२२ दिसंबर १९५८)
३९. मानसी (राष्ट्रभारती, दिसंबर १९५९)
४०. आराधनीया (राष्ट्रभारती, फरवरी १९५९)
४१. ओ प्रकाश !... (१ जनवरी १९५९)
४२. असम्पृक्त (राष्ट्रभारती, नवंबर १९५९)
४३. जीवन-रस पीता मै (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १९ जुलाई १९५९)
४४. एक तुम हो, एक मैं हूँ (लहर, दिसंबर १९५९)
४५. विसर्जित अस्तित्व (१६ सितंबर १९५९)
४६. सेतुबंध (३ अगस्त १९५९)
४७. साँस का गीत (राष्ट्रभारती, जनवरी १९६१)
४८. प्रज्ञा (समाज-कल्याण, जुलाई १९५९)
४९. रस-सिद्ध (राष्ट्रभारती, अप्रैल १९६०)
५०. स्वयंनिर्णीत (योगी, दीपावली-अंक १९६०)
५१. संचार (कादंबिनी, दिसंबर १९६४)
५२. गोपन गीत (नई धारा, जनवरी १९६५)
५३. नीराजन (राष्ट्रभारती, अक्टूबर १९६४)
५४. आलिंगित मैं (२३ मई १९६२)
५५. क्षितिज (सचित्र सागर, दिसंबर १९६४)
५६. संज्ञा एक सुजाता (त्रिपथगा, जून १९६१)
५७. जीवन की कविता (राष्ट्रभारती, मार्च १९६१)
५८. जागर्या (सन्मार्ग, दीपावली-अंक १९६१)

५९. बंदी का स्वर (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ५ मार्च १९६२)
६०. ज्वाला का शृंगार (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ४ नवंबर १९६२)
६१. गीत (राष्ट्रभारती, जून १९६३)
६२. साँस की छाया (२२ जुलाई १९६३)
६३. देवता का दान (धर्मयुग, १५ जुलाई १९६२)
६४. विसर्जन (राष्ट्रभारती, अगस्त १९६२)
६५. सुप्रतीकित (११ जनवरी १९६३)
६६. विश्वंभरा (कादंबिनी, दिसंबर १९६५)